DVIVEDI GANITA KA ITIHASA

गणित का इतिहास ।

पहला भाग,

पाटीगणित ।

बनारससंस्कृतकालेज के प्रधानाध्यापक
महामहोपाध्याय सुधाकरद्विवेदी ने बनाया ।

A HISTORY

OF

MATHEMATICS.

FIRST PART

ARITHMETIC.

BY

Mahāmahopādhyāya Sudhākara Dvivedi,
1st Professor, Government Sanskrit College, Benares
AND
Fellow of Allahabad University.

बनारस
प्रभाकरी प्रिण्टिङ्ग वर्क्स में
बाबूरामनारायणद्वारा मुद्रित ।

सन् १९१० ईस्वी.

Price Rs. 2.] [मूल्य २)

A HISTORY OF MATHEMATICS.

BY

Mahámahopádhyáya Sudhákara Dvivedi.

विषयानुक्रम ।

भूमिका ।

भारत महँ नरनारिमुँह बात बात में राम ।
जो राजत घर घर सदा ताहि करउँ परनाम ॥

बनारस गवर्नमेंट संस्कृत कालेज के ज्यौतिषाचार्य परीक्षा देने-वाले विद्यार्थिओं के लिये मैं हर साल गणित के इतिहास पर कुछ न कुछ व्याख्यान देता हूँ ।

पिछले साल व्याख्यान देते समय यह इच्छा हुई कि जौं यह व्याख्यान हिंदी-भाषा में लिख कर छपवा दिया जाय तो अपने देशभाइओं का कुछ न कुछ जरूर उपकार हो । इस लिये आज इस का पहला भाग, 'पाटीगणित' छपवा कर विद्वानों के सामने खडा कर दिया है ।

यहाँ पर कोई ऐसी सोसाइटी नहीं जिस से पंडितों के ग्रंथ सहज में छापे जायँ । इस लिये मुझे संकेत चिह्नों के बनवाने में बहुत कष्ट उठाने पडे तौभी मेरे मन लायक संकेतचिह्न न बने ।

इस में मुझे जो जो बातें गुरुपरंपरा से मालूम थीं उन्हें और जो कुछ पुराने संस्कृतग्रंथों से और प्रामाणिक युरोपियन ग्रंथों से सच जान पडीं उन सब को लिखा है । यूरप के पंडितों के नाम मुझे अँगरेजी अक्षरों में मिले जिन के ठीक ठीक उच्चारण किसी युरोपियन के मुँह से सुनने का मुझे मोका न मिला इस लिये विशेष संभव है कि हिंदी में उन के शुद्ध नाम के लिखने में भूल हो गई हो । इसी लिये हिंदी नाम के आगे अँगरेजी नाम भी अँगरेजी अक्षरों में लिख दिए गए हैं जिन से पढनेवाले शुद्ध नाम समझ लें । इस में जिन जिन पंडितों के नाम आए हैं, संक्षेप से यथा

संभव, उनके जीवनचरित्र भी अंत में लिख दिए गए हैं और अकारादिक्रम से ग्रंथ के विशेष शब्द भी अनुक्रमणिका में दे दिए गए हैं जिस में पंडितों को किसी शब्द के ढूँढने में कष्ट न हो।

अंत में पंडितों से विनती है कि इस में जहाँ कुछ जो भूल हो गई हो उसे ठीक करें और इस विषय पर इस से भी अच्छी पोथी लिखने के लिये कमर कसें। मैंने तो इस देश में एक नींव डाल दी है, आप लोग चाहे इस पर महल उठावें या इस नींव को खोद कर बहा दें।

मेरी इच्छा है कि आगे इस का दूसरा भाग (बीजगणित) लिखूँ।

पहला भाग पाटीगणित, दूसरा भाग बीजगणित, तीसरा भाग रेखागणित और क्षेत्रव्यवहार और चौथा भाग त्रिकोणमिति और ज्यौतिषसिद्धान्त, ये चार भाग इस गणित के इतिहास में रहेंगे।

"जो ढूँढा सो पाइयाँ गहिरे पानी पैठि।
वे बपुरी क्या पाइयाँ रहीं किनारे बैठि ॥"

(कबीरदास)

२९-१०-१९१० } सुधाकरद्विवेदी।

श्रीः।

श्रीजानकीवल्लभो विजयते।

गणित का इतिहास।

पहला भाग,

पाटीगणित[१]।

जयति जगति चित्रं यच्चरित्रं पवित्रं
सुरमनुजसुगीतं सज्जनानन्दनीतम्।
तमिह हृदि नितान्तं सत्यसीतासुकान्तं
लिखति गणितवृत्तं स्थापयित्वा सुवृत्तम् ॥

अंक।

इस संसार में व्यवहार के लिये जिस समय **शब्द** बनाए गए, उसके पहले जो ध्यान देकर विचार करो तो एक, दो, तीन,...के समझने के लिये पहले पहल इन्हीं **अंकों** के **शब्द** बने होंगे। गर्भ में **बच्चे** के आते ही एक, दो,...महीनों की गिनती होने लगती है।

बहुत लोग कहते हैं कि पहले **नाद** और **बिंदु** फिर पीछे **चारो** वेद बने। जो कुछ हो पर नाद के साथ **सात** सुरों के बोलते ही **सात** का **अंक** और वेद के साथ **चारो** वेद कहने में **चार** का **अंक** आता है। **वेदत्रयी** कहते ही **तीन** आ गया।

१ पाटीगणित को व्यक्तगणित और कहीं कहीं अंकगणित भी कहते हैं।

महादेव की ढक्का से व्याकरण के **चौदह** सूत्र निकलते ही संस्कृत में **'चतुर्दश'** बना। **पाणिनि** के व्याकरण के नामकरण में **'अष्टाध्यायी'** कहते ही **आठ** का शब्द बनाया गया; **एकवचन** और **द्विवचन** में **एक** और **दो** आए। **निरुक्त** वैदिक-कोश ही है, उस में "इमानि पृथिवीनामधेयान्येक**विंशतिः**", "हिरण्यनामान्युत्तराणि **पञ्चदश**", "कान्तिकर्माण उत्तरे धातवोऽ**ष्टादश**", "गतिकर्मणे उत्तरे धातवो **द्वाविंशं शतम्**",...... में अंक ही भरे हैं। शिक्षा में **"त्रिषष्टिर्वा चतुःषष्टिर्**वर्णाः शम्भुमते मताः" इस में **तिरसठ** और **चौसठ** आए। सब से प्रधान गायत्रीछंद के लक्षण में "इह हि **षडक्षरो** गायत्रीचरणः" इस में **छ** आया। **कल्प** में वेदिओं की रचना में जहाँ देखो तहाँ **अंक** ही प्रधान हैं।

सांख्य में **'पञ्च** भूतानि' **'दशे**न्द्रियाणि' कहते ही **पाँच** और **दश** आए। योग में **'षट्** चक्राणि' **'अष्ट** कमलानि' **'दश** रन्ध्राणि' बोलते ही **छ, आठ** और **दश** आ जाते हैं। **पूर्वमीमांसा** में कर्म प्रधान होने से सब जगह **अंक** ही **अंक** हैं। **वेदांत** (उत्तरमीमांसा) में **अद्वितीय** कहते ही **एक** और **दो** मुख्य हो जाते हैं। **न्याय** और **वैशेषिक** में **चौबीस** गुण, **द्व्यणुक, त्र्यणुक,**... कहने में **चौबीस, दो, तीन,** ...आते हैं।

अठारह पुराण कहते ही **अठारह** आता है।

स्मृति याने **धर्मशास्त्र** में **त्रिरात्र, पक्षिणी, दशाह, युग,**... के वर्णन में जहाँ देखो तहाँ **अंक** ही **अंक** देख पड़ते हैं।

वाल्मीकिरामायण में विश्वामित्र से दशरथ का कहना "इयं **त्वक्षौहिणी** पूर्णा बलस्य मम दुर्जया", **चौदह** वर्ष राम के वनवास में, दशरथ के मरने पर **द्वादशाह** अशौच और किष्किंधाकांड में वानरों की गिनती में सब **अंक** ही हैं। **काव्य** और **नाटकों** में सर्ग और अंकों की गिनती में **अंक** ही **अंक** हैं।

महाभारत में **पाँचो** पांडव, **अक्षौहिणी, बारह** वर्ष तक वनवास, विष्णु**सहस्रनाम,**... में सब अंक ही भरे हैं।

वैद्यशास्त्र में रस बनाने में जहाँ देखो तहाँ **अंक** हैं। **शस्त्रविद्या** में लोहे पर पानी चढ़ाने, आँच में तपाने,... में **अंक** ही हैं।

ऊपर लिखी हुई बातों से निश्चय है कि संसार में **गिनती** के विना कोई व्यवहार नहीं हो सकता। जिस चारपाई पर सोते हो और जिस घर में रहते हो वे भी अंक के विना नहीं बन सकते।[१]

जिन **अंकों** से संसार के सब व्यवहार बँधे हैं, वे **अंक** कैसे बने इस के जानने की लालसा, मैं समझता हूँ, छोटे बड़े सभी को होती होगी।

सब से पहले यह **प्रश्न** उठता है कि **गिनती** करने में **नव** अंक और एक **शून्य** ये **दश** ही चिह्न क्यों बनाए गए।

इस के उत्तर में यह बात मन में आती है—

आदमी मक़दूर भर दूसरे की मदद नहीं चाहता। अपने से जो काम सहज में हो सकता है उस के लिये दूसरे की क्या जरूरत। इस लिये लोग पहले पहल गिनने के लिये अपने **दोनों हाथों** की **अँगुलिओं** को काम में लाए और **दशों** के गिन जाने पर **एक दहाई** कहाई। फिर पीछे से दूसरों को समझाने के लिये इन्हीं **नव अँगुलिओं** के स्थान में **एक, दो,**... के निशान बनाए गए; उन्हीं को संस्कृत में **अंक** कहते हैं। यह **अंक शब्द 'अकि'** धातु से, जिस का अर्थ चिह्न करना है, बना है।

जानते हो कि 'मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना' याने हर एक आदमी की बुद्धि जुदी जुदी है इस लिये सब जगह **नव अंक** बनाने की रीति

---

१ इसी लिये ज्यौतिषवेदाङ्ग में लिखा है—

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद्वेदाङ्गशास्त्राणां **गणितं** मूर्धनि स्थितम्॥

न पैदा हुई। किसी जगह एक ही हाथ की **अँगुलिओं** से गिनने पर **पाँच** ही **अंक** बने। कहीं कहीं नव अंकों को और दहाई जान लेने पर अपने अपने सुभीते के लिये, **११ गुने, १२ गुने, ६० गुने,**… अंक बनाए गए।

अरिस्टोटल (*Aristotle* = **अरस्तू**) ने भी जो ईशा मसीह के ३४० वर्ष पहले हुए हैं अपनी **प्राब्लेमाटा** (*Problemata*) नाम की पोथी में यही प्रश्न उठाया है कि सब आदमी के बीच में **दश** ही तक क्यों गिनती के चिह्न हैं। इस के उत्तर में **अरस्तू** ने भी यही लिखा है कि सब लोगों ने अपने हाथ की **अँगुलिओं** को गिनती करने में लिए इस लिये **दश** ही चिह्न बने पर कहीं कहीं लड़कों के ऐसा याद न रहने की वजह से गिनने के अंक कुछ कम बनाए गए हैं— जैसे **थ्रेशियन्स** (*Threcians*) जाति में **चार** ही तक अंक हैं। इस से साफ है कि **अरस्तू** के भी बहुत पहले से दहाई प्रचलित है।

अपने अपने देश में बुद्धिमानों ने इन अंकों के जुदे जुदे निशान बनाए। **अशोक** राजा के समय के **तामे** या **पत्थर** पर के जो लेख पाए गए हैं उन में एक ·, −, ⌐, ⌒, ⌒ इतने तरह के पाए जाते हैं।

इस तरह से **अक्षर** लिखने की विद्या के पहले जुदे जुदे देशों में जुदे जुदे अंकों के चिह्न बने। पीछे से **शब्दों** के लिखने के लिये जब **अक्षर** बनाए गए तब कहीं कहीं तो पुराने संकेत रह गए और और जगह **अंकों** को उन के **शब्दों** के पहले **अक्षर** की सूरत से जाहिर करने लगे, फिर जल्दी जल्दी लिखने में पहले **अक्षर** की सूरत बिगड़ते बिगड़ते आज कल के १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९ हो गए।

ऊपर की बात को सिद्ध करने के पहले कुछ अपने और कुछ दूसरे देशों के **अंक-चिह्न** दिखलाते हैं।

पौराणिकों का मत है कि पुराणों में पूजने के लिये जो **नवग्रहों** की सूरतें लिखी हैं उन्हीं की बिगड़ी सूरत १, २,… हैं।

होम वगैरह में कर्मकांडी ग्रहों की जो सूरतें बनाते हैं उन की बिगड़ी सूरत १, २,… हैं यह बात असंभव जान पड़ती है। **सूर्य** की गोल **परिधि** ऐसी सूरत है। **परिधि** छोटी बड़ी हो सकती है पर वह बिगड़ कर लंबी १ ऐसी हो जाय यह असंभव है।

दुर्गाशङ्कर पाठक (गणकतरङ्गिणी देखो) जी का मत है कि **कुबेर** की नव**निधिओं** की बिगड़ी सूरत १, २,… हैं।

कुबेर की नवनिधिओं के नाम— **कुंद, मुकुंद, नील, कच्छप** (कछुआ), **मकर** (मगर), **खर्व** (छोटा कमल), **पद्म** (कुछ बड़ा कमल), **महापद्म** (सब से बड़ा कमल), और **शंख** हैं।

कुंद (एक माघी फूल की कली) की सूरत [चिह्न] =१।
मुकुंद (फूल जिसकी डंटी में दो कली होती हैं उस) की सूरत …. … [चिह्न] =२।
नील (फूल जिसकी डंटी में तीन कली होती हैं उस) की सूरत … [चिह्न] =३।

कच्छप (कछुए) की सूरत … [चिह्न] =४।

मकर (मगर) की सूरत … … [चिह्न] =५।

खर्व (छोटे कमल) की सूरत … [चिह्न] =६।

पद्म (कुछ बड़े कमल) की सूरत… [चिह्न] =७।

महापद्म (सब से बड़े कमल) की सूरत ... =८।

और **शंख** की सूरत ... ... =९।

जो सोच कर देखो तो सारे संसार में **खड़ी** और **तिरछी रेखा** ही के सब प्रपंच हैं। छोटे बच्चे को जो **कलम** पकड़ा दो तो वह **जमीन** या **कागज** पर **खड़ी** या **तिरछी रेखा** ही खींचने लगता है; कभी कलम को चारो ओर घुमा भी देता है जिस से एक **गोल टेढ़ी मुँदरी** ऐसी परिधि भी बन जाती है। इन्हीं रेखाओं ही से संसार में सब सूरतें बनी हैं।

रेखा के 'र' को 'ल' से बदल देने से, जैसा कि र, ड, ल, का अदल बदल संस्कृत और हिंदी में हुआ करता है, **'रेखा'** का दूसरा नाम **'लेखा'** है। **'लेखा'** हिसाब के अर्थ में **बौद्ध** के पहले से **हिंदुस्तान** में प्रचलित है।

प्राकृत के **जातकों** में जिन पर **बुद्धघोष** की टीका हैं, बहुतों के जीवनचरित में पढ़ने के समय **लेखा, रूप** और **गणना** ये सब नाम आए हैं। **रूप** से अब तक संस्कृत के गणित में प्रचलित **सिक्के** लिए जाते हैं। **भास्कराचार्य** ने अपने **बीज** में सब जगह **'रूप'** प्रसिद्ध सिक्के के अर्थ में लिखा है। आज कल भी सब जगह लोग कहा करते हैं कि इस का **लेखा** (हिसाब) लगाओ।

जयरामज्यौतिषीजी का मत है—

पाणिनि के **व्याकरण** से **'लिख'** (अक्षरविन्यासे) धातु से पहले **लेखा** (लिख्यते या=जो लिखा जाता है) फिर 'ल' की जगह 'र' कर देने से 'रेखा' बना है। यही बात **भानुदीक्षित** ने अपनी **अमरकोश** की टीका में लिखी है। **रेखा** ही से **अक्षरों** के चिह्न बनाए गए हैं। **वेद** के मन्त्रों में **उदात्त, अनुदात्त** और **स्वरित** स्वरों के जानने के लिये सब से पहले **खड़ी** और **तिरछी रेखा** ही बनाई गई।

इन सब बातों से कह सकते हैं —

१ = | , — ऐसा हो सकता है। इसी तरह—

२ = , एक **तिरछी** और एक **खड़ी** रेखा मिलाने से।

३ = , एक **खड़ी** एक **तिरछी** फिर एक **खड़ी** रेखा मिलाने से।

४ = , इस में छोटी बड़ी **दो तिरछी** और **दो खड़ी** रेखा हैं।

५ = , इस में **दो तिरछी, दो खड़ी** और एक तनिक **दहिनी** ओर झुँकती **रेखा** हैं।

६ = , इस में **तीन तिरछी** और **तीन खड़ी** रेखा हैं।

७ = , इस में छोटी बड़ी **चार तिरछी** और **तीन खड़ी** रेखा हैं।

८ = , इस में छोटी बड़ी **चार तिरछी** और **चार खड़ी** रेखा हैं।

९ = , इस में छोटी बड़ी **पाँच तिरछी** और **चार खड़ी** रेखा हैं।

एकम्, द्वे, त्रीणि, चत्वारि, पञ्च, षट्, सप्त, अष्ट और नव ये **पाणिनि** और **शाकटायन** के **उणादि** से बनते हैं इसलिये एक प्रकार के स्वयं सिद्ध ही हैं।

एक— 'इण' (गतौ) धातु से **कन्** प्रत्यय करने से बना है। (एति गच्छति सर्वासु संख्यासु) जो सभी संख्याओं में रहे।

द्वि— **पाणिनि** के अनुसार—

'दु' (गतौ) धातु से **इ** प्रत्यय करने से बना है ('अच इः') जिसका चलनेवाला अर्थ है।

हेमचन्द्र के अनुसार—

'उभे' (पूरणे) धातु से **इ** और **त्र** प्रत्यय करने से द्वि, त्रि बनते हैं (उभेर्द्वित्रौ च) जिस का पूरण करनेवाला अर्थ है।

गुजरात के प्रसिद्ध **'शब्दचिन्तामणि'** कोश में—

'दृ' (विदारणे आदरे च) धातु से **ड्वि** प्रत्यय से 'द्वि' बना है। जिस का चीरनेवाला वा आदर करनेवाला अर्थ है।

त्रि— **'तृ'** (प्लवनतरणयोः) धातु से **ड्रि** प्रत्यय करने से बना है। **उणादि** में इस के लिये 'तरतेर्ड्रिः' यह सूत्र ही है। जो पानी पर तैरे वह 'त्रि' है।

चतुर्— **'चते'** (याचने) धातु से उणादि के **तुर्** प्रत्यय से बना है। चारो ओर जाँचे वह 'चतुर्' है।

पञ्च— **'पचि'** (विस्तारे) धातु से उणादि **अन्** प्रत्यय करने से बना है। जो फैला हो वह 'पञ्च' है।

षट्— **'षट'** (अवयवे) धातु से उणादि **क्विप्** प्रत्यय से बना है। जिस में अवयव (कई हिस्से) हों वह 'षट्' है।

सप्त— **'षप्'** (समवाये) धातु से उणादि **कनिन्** प्रत्यय और तुट् के आने से बना है। **भट्टोजिदीक्षित** अपनी सिद्धान्तकौमुदी में लिखते हैं— 'समवायः सम्बन्धः सम्यगवबोधो वा,' याने समवाय से सम्बन्ध या अच्छी तरह से ज्ञान लिया जाता है। इस लिये जिस से अच्छी तरह ज्ञान हो वह 'सप्त' है।

अष्ट— **'अशू'** (व्याप्तौ संघाते च) धातु से उणादि **कनिन्** प्रत्यय और **तुक्** के ले आने से बना है। जो सब जगह मौजूद (व्याप्त) हो वह 'अष्ट' है।

नव— **'णु'** (स्तुतौ) धातु से उणादि **कनिन्** प्रत्यय करने से बना है। जो तारीफ के लायक हो वह 'नव' है।

श्रीहर्ष के समय हमारे लोगों के कान की जैसी सूरत है उसी तरह का **'नव'** लिखा जाता था। उन्हों ने अपने काव्य **नैषधचरित** के सातवें सर्ग के ६३वें श्लोक में **दमयन्ती** के कान की उपमा **'नव' अंक** से दी है—

> अस्या यदष्टादश संविभज्य विद्याः श्रुती दध्रतुरर्धमर्धम्।
> कर्णान्तरुत्कीर्णगभीररेखः किं तस्य संख्यैव न वा नवाङ्कः॥

लोग जब **कागज** बनाना नहीं जानते थे उस समय **ताड़** के पत्ते पर **लोहे** की नोकदार **कलम** से खोद खोद कर **अक्षरों** की सूरतें बनाते थे। वे **आँखों** से अच्छी तरह देख पड़ें इस गरज से खोदे हुए **ताड़** के पत्तों को **करखी** से **लीप** देते थे। **करखी** खोदे हुए अक्षरों में घुस जाती थी जिस से उनकी सूरत साफ साफ देख पड़ती थी। इस **लीपने** ही पर से अक्षरों का दूसरा नाम **'लिपि'** पड़ गया। **वार्त्तिककार कात्यायन** के समय के पहले ही से यह **'लिपि'** अक्षरों के अर्थ में प्रचलित हो गई थी इसी लिये **पाणिनि** के सूत्र पर **कात्यायन** ने **'यवना-** लिप्याम्' यह वार्त्तिक बनाया। इसी से 'यवनानां लिपिः' **यवनानी** यह सिद्ध किया है। यहाँ **यवन** से **ग्रीक** लोग हैं। इस में कुछ भी संशय नहीं कि **कात्यायन** के समय में **ग्रीक** लोग **हिंदुस्तान** में अच्छी तरह से **व्यापार** करने के लिये आते जाते थे। इस पर **ग्रीक** के **अंकप्रकरण** में कुछ विशेष लिखा जायगा।

लिपि ही को लेकर आज कल हम लोग **काश्मीरीलिपि, देवनागरीलिपि,**......... बोलते हैं।

अब भी **बंगाल** और **मद्रास** के बहुत लोग शौक़ से **ताड़** के पत्तों पर लिखते हैं।

लिप (उपलेपे) धातु से 'इक् कृष्यादिभ्यः' सूत्र से इक्

प्रत्यय करने से (लिप्यते इति **लिपिः** =जो लीपा जाय वह लिपि है) '**लिपि**' बना है । **अमरकोश** में लिखा है कि—"लिखिताक्षर-विन्यासे **लिपिर्लिबिरुभे** स्त्रियौ ।"

पुराने समय के **मीमांसा, वेदांत, न्याय** और **व्याकरण** के पंडित **हिसाब** की ओर कुछ भी ध्यान नहीं देते थे । इस लिये वे लोग लिखे हुए **ताड़** के पत्तों के बीच में एक या दो छेद कर उनके बीच में एक या दो मजबूत सूत की **डोरी** पहना देते थे जिस से उन **पत्तों** का उलट पुलट न हो । वे **पत्ते** उस **डोरे** में माले की **मनिआँ** ऐसे पड़े रहते थे। **बनारस** संस्कृत कालेज, **एशियाटिक सोसाइटी बंगाल,** ...... के पुस्तकालयों में इस तरह की बहुत पोथिआँ मौजूद हैं । बहुत पोथिआँ **'तारिएट'** (**बजरबट्टू**) पेंड के **पत्तों** पर भी लिखी हुई हैं ।

अब भी **ज्यौतिषिओं** को छोड़ कर और शास्त्रवाले बहुत **पंडित** सौ के ऊपर की संख्या लिख पढ़ नहीं सकते ।

बनारस, चौकाघाट के पास **बरना** नदी के दहिने किनारे पर **वेदांती साधुओं** का एक **अखाड़ा** है । वहाँ पर पहले बड़े **पंडित** एक **वैष्णवदास** नाम के बाबा रहते थे । मेरे पिता ने उन से कई एक **पुराण** पढ़े थे । मैं ने भी उन से **व्याकरण** पढ़ा था ।

एक समय बरसात के बाद **चित्रा** के सूर्य में वे अपनी पोथिओं को घाम दिखाते थे । हवा के झकोर से उन के **व्याकरण महाभाष्य** के सब **पन्ने** उड़ कर छितर बितर हो गए । बाबाजी पढ़ पढ़ कर पाठों की संगति से उन पन्नों को लगाने बैठे । सबेरे दश बजे से लेकर शाम तक पन्ने न लगे । अंत में हार मान कर बड़े उदास हो कर बैठे । उसी समय मैं भी पढ़ने के लिये वहाँ पहुँचा और बाबाजी को बहुत उदास देख कर पूछा कि आज आप की कैसी तबीयत है । उन्हों ने कहा कि **पन्नों** के उलट पुलट हो जाने

से मेरी **महाभाष्य** की पोथी खराब हो गई । मैं ने हँस कर कहा कि आप उदास क्यों होते हैं मैं अभी **पन्नों** को लगा देता हूँ; **पन्नों** पर गिनती के **अंक** तो हैं न ? । उन्हों ने कहा कि **अंक** तो हैं पर वे मुझे समझ नहीं पड़ते । मैं ने आध घंटे में सब **पन्नों** को लगा दिया । बाबाजी ने इस पर बहुत खुश हो कर मुझे एक अच्छी **ऊन** की **लोई** इनाम दी ।

यह न समझो कि जैसी जयरामजी ने ऊपर **तिरछी** और **खड़ी रेखाओं** के मेल से **अंकों** की एक तरह की सूरत दिखाई है वही सब के मन में आई । अपने अपने समय में जुदे जुदे देश के लिखनेवाले जुदी जुदी तरह से **खड़ी** और **तिरछी रेखाओं** को मिला कर तरह तरह की **अंकों** की सूरत दिखाई है ।

व्याबिलोनिआ (*Babylonia*) के ज्यौतिषिओं के अंक ।

व्याबिलोनिआ के रहनेवाले **ज्यौतिषी** ▼ इस खड़ पंजे से एक, दोनों पंजों को हाथ जोड़ने के ऐसा तिरछा रखने से ◀ दश, ▼▶ इस से सौ, ▼▼ इस से दो, ▼▼▼ इस से तीन, ▼▼▼▼ इस से चार, ◀◀▼▼▼ इस से तेइस और ◀◀◀ इस से तीस लेते थे । वे लोग हजार को ◀▼▶ ऐसे लिखते, याने पहले दश से यह दिखलाते थे कि दशगुना ▼▶ सौ है । उन के यहाँ इस हजार की बाईं ओर फिर ◀ दश रखने से दश हजार होता है ।

पराशिया में बड़े **सिकंदर** बादशाह के समय इन्हीं पंजों की सूरत से **अक्षर** बने हैं । उस वर्णमाला में ▶▼◀ =अलिफ, ⋚▼ =बे । और अक्षरों के लिये सन् १८५६ ई० में **जर्मन** में छपी *Alphabete orientalischer und Occidentalischer. Sprachen*, को देखो ।

ब्याबिलोनिआ में आज तक जो **संख्याएँ** पाई गई हैं सब **दशलाख** के नीचे की हैं। वहाँ की दो **सारणी** भी मिली हैं। पहली में एक से लेकर साठ तक के **वर्ग** लिखे हैं। संभव है कि यह **सारणी ईशामसीह** के पहले २३०० और १६०० वर्ष के बीच में बनाई गई हो। इस **सारणी** में अंकों के स्थान साठगुने हैं क्योंकि उस में ८² (=६४)=१, ४ ऐसा लिखा है। इसी तरह ९²=१, २१। १०²=१, ४०। ११²=२, १ ऐसे लिखे हैं।

हिंदुओं में भी **ग्रहों** के **गणित** और **इष्टकाल** में अंकों के साठगुने **स्थानों** की रीति आज तक प्रचलित है। संस्कृत में ६४ कला को $\frac{१}{४}$ ऐसा लिखते हैं। सब से बड़े स्थान के अंक को सब से ऊपर और उस से कम को नीचे लिखते हैं।

हिंदुओं में **दिन** का साठवाँ भाग **घटी, घटी** का साठवाँ भाग **पल** और **पल** का साठवाँ भाग **विपल** कहाता है। **आर्यभटीय** के **कालपाद** में लिखा है—

"षष्टिर्नाड्यो दिवसः षष्टिस्तु विनाडिका नाडी।"

प्रचलित **सूर्यसिद्धान्त** में लिखा है कि **ग्रहों** के **गणित** का ज्ञान **सूर्य** से **मयदैत्य** को मिला फिर **मय** ने **लंका** की आधीरात में उस **गणित** का प्रचार किया (मेरी बनाई सूर्य-सिद्धान्त की टीका सुधावर्षिणी देखो)। पता लगाने से मालूम होता है कि **मय ग्रीक** था। **संस्कृत** में **ग्रीक** को लोग **यवन** या **म्लेच्छ** कहते थे। **वराहमिहिर** ने अपनी **बृहत्संहिता** में लिखा है—

"**म्लेच्छा** हि **यवना**स्तेषु सम्यक् शास्त्रमिदं स्थितम्।
ऋषिवत् तेऽपि पूज्यन्ते किं पुनर्ब्रह्मविद् द्विजः॥"

बहुत लोगों का मत है कि **ग्रीक** पंडित **हाइप्सिक्लेस** (*Hypsicles*) और **टालमी** (*Ptolemy*) **ब्याबिलोनिआ** से इस साठ विभाग (कला, विकला) को अपने देश में लाए फिर वहाँ से **हिंदुस्तान** में भी वही रीति फैली। जो हो पर ३६० **सौर** दिन का एक **सौर** वर्ष यह **ऋग्वेद** में भी लिखा है।

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत।
तस्मिन्त्साकं त्रिशता न शंकवोऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः॥
(ऋ. सं. १, १६४, ४८.)

ब्याबिलोनिआ की दूसरी **सारणी** में **अमावास्या** के अंत से **पूर्णिमा** के अंत तक **चंद्रबिंब** के **शुक्ल** मान लिखे हैं। **शुक्ल**पक्ष की परिवा से पंचमी तक **शुक्ल**मान ५।१०।२०।३०।१, २०=८०, ये लिखे हैं। फिर आगे हर एक **तिथि** में सोरह सोरह की बढ़ती से **शुक्ल** के मान लिखे हैं। इस **सारणी** में **चंद्रबिंब**=२४० लिखा है। पहले पाँच तिथि तक **शुक्ल गुणोत्तर श्रेढ़ी** में फिर पीछे **योग श्रेढ़ी** में लिखे हैं।

षड्विंश ब्राह्मण में लिखा है कि चन्द्रमा में १६ कला रहती है; **कृष्ण**पक्ष की पंचमी तक पाँच कला **देवता,** ६–१० तक **रुद्र,** ६–१० कला और ११–१५ तक **वसु** ११–१५ कला पीते हैं। अमावास्या के दिन **सोरहवीं कला** चंद्रमा में बच जाती है उसी से और **देव-रुद्र-वसुओं** के उपाय से फिर **पूर्णिमा** तक चंद्रमा में सब कला आ जाती हैं।

"देवा दिव्येन पात्रेणादित्याः प्रथमं पञ्चकलं पञ्चमीं भक्षयन्ति।
तेऽन्तरिक्षेण पात्रेण रुद्रा द्वितीयपञ्चकलं दशमीं भक्षयन्ति॥
ते पृथिव्या पात्रेण वसवस्तृतीयं पञ्चकलं पञ्चदशीं भक्षयन्ति।
षोडशी कलाऽवशिष्यते षोडशकलो वै चन्द्रमाः॥"
(षड्विंशब्राह्मण, ४प्रपाठक, ६ खण्ड)

मैं समझता हूँ कि सूक्ष्म **शुक्ल** की गिनती करने के लिये हर एक कला के किसी ने १६ हिस्से किए इस लिये चंद्रबिंब=२५६। इस में सोरहवीं कला के, जो चंद्र के भीतर **अक्षय** बच जाती है,

१६ हिस्से निकाल देने से **चंद्रमा** का बिंब २५६−१६=२४० ठहराया है। चंद्रबिंब से, यहाँ **थाली** ऐसा जो **पूर्णिमा** के दिन गोल **चंद्रमा** देख पड़ता है उस का व्यास है।

चंद्रपरिधि का **व्यास** २४० मानना वैसा ही है जैसा कि हमारे यहाँ **वराहमिहिर** और और लोगों ने **वृत्त** का **व्यासार्ध** १२० याने **वृत्त-व्यास** २४० मान कर चापों की जीवा कोटिज्या बनाए हैं। (पञ्चसिद्धान्तिका देखो)

मेरी समझ में दूसरी **सारणी** में पहली चार संख्या जो ५, १०, २०, ४०, हैं वे सोरह गुने स्थान के हैं इस लिये ५=५, १०=१×१६+०=१६, २०=३२ और ४०=६४ ये हुए। ६४ चतुर्थी का शुक्ल, ५ यह **शुक्लपक्ष** के **परिवा** के तीसरे हिस्से का **शुक्ल** है। तृतीया का **शुक्ल** ३०=४८ यह **सारणी** में छूट गया है क्योंकि जब चंद्र=२४० और **तिथि**=१५ तो एक **तिथि** में शुक्ल=२४०/१५=१६ होना चाहिए इस लिये हर एक **तिथि** में सोरह सोरह की बढ़ती होनी चाहिए।

एजिप्ट के अंक और शब्द।

तीसरे **रामेसेस** (*Rameses III*) के राज के एक प्रकार के **पेंड़** की **छालों** पर लिखे हुए **अंक** मिले हैं। उन से पता लगता है कि उस समय **एजिप्ट** के लोगों ने तरह तरह के **हंसों** के मुहों की सूरतों से अंकों के स्थान दिखलाए हैं। इन के यहाँ **अंकों** के दो तरह के चिह्न मिलते हैं, एक **चिह्न** हिसाब के लिये और दूसरा खंभे वगैरह में खोदने के लिये था। **ईशामसीह** के पहले १२०० वर्ष की यह बात है।

हिसाब करने के लिये उन के यहाँ—

१=|=उआ (*Ua*)
२=||=**सेन** (*Sen*)

३=|||=**ज़ेमेट** (*Zemet*)
४=||||=**फ़्लू या आफ़्लू** (*Flu or Oftu*)
५=||/|||/✕ =**टुऔ** (*Tuaw*)
६=|||/|||=**सास्** (*Sas*)
७=|||/||||=**सेफ़ेज़्** (*Sefez*)
८=||||/||||=**ज़ेमेन्न्यू** (*Zemennu*)
९=||||/|||||=**पौत या पेस्ट** (*Paut or pest*)
१०=∩=**मेद्** (*Met*)
२०=∩∩=**तौत्** (*Taut*)
३०=∩∩∩=**माब्** (*Mab*)
४०=∩∩/∩∩=**हेमेंट** (*Hement*)
५०=∩∩/∩∩∩=?
६०=∩∩∩/∩∩∩=?
७०=∩∩∩/∩∩∩∩=**सेफ़ेज़्** (*Sefez*)?
८०=∩∩∩∩/∩∩∩∩=**ज़ेमेन्नुआ** (*Zemennua*)
९०=∩∩∩∩/∩∩∩∩∩=?
१००=९=**सा** (*Saa*)
१०००=☥=**ज़ा** (*Za*)
१००००=⌐=**ताब्** (*Tab*)

१००००० = 𓆏 = **हेफेन्नु** (*Hefennu*)

१०००००० = 𓁨 = **हेह** (*Heh*)

१००००००० = Ω = **सेन्नु** (*Sennu*)

ये चिह्न हैं।

लाख के लिये एक **मेंड़क, दश लाख** के लिये दोनों हाथ उठाए एक बैठा **आदमी** और करोड़ के लिये एक गोला है। सौ, हज़ार और दश हज़ार के लिये तीन तरह के **हंसों** के मुहँ हैं। दश के लिये मिले हुए दोनों **पंजे** हैं। जो **आदमी** से जल**मानुस** और **गोले** से किसी पानी के **जानवर** के **अंडे** या **हड्डी** लें तो दश के ऊपर सब स्थानों के लिये **पानी** ही के पदार्थ माने गए। आगे चल कर देखोगे कि यही बात **हिंदुओं** में भी है।

ये लोग भी **हिंदुओं** के ऐसा एकाई से बाईं ओर और ऊँचे ऊँचे स्थानों को रखते थे। जैसे—

𓂭𓂭𓂭 𓆼𓆼𓆼𓆼 𓍢𓍢𓍢𓍢𓍢𓍢𓍢𓍢 𓎆𓎆𓎆𓎆𓎆𓎆𓎆𓎆𓎆 𓏺𓏺𓏺𓏺𓏺𓏺𓏺 = ३४८९७।

इन के यहाँ **करोड़** से ऊपर के स्थान नहीं जान पड़ते और **शून्य** के लिये भी कोई निशान नहीं जान पड़ता।

खंभों पर खोदे हुए **अंक** येही हैं पर उन के आगे पीछे कुछ बेल, बूटे, छुरी, चिड़िओं ... की सूरत बड़ी खूबसूरती के साथ बनी हुई हैं। जिसे और बातें जाननी हो वह *E. A. Wallis Budge, M. A.* की *Books on Egypt and Chaldaea Vol. III* देखे।

पिकाक (*Rev. G. Pea coek. D. D.*) साहब ने ऊपर दिखलाई **एजिप्ट** के **अंकों** की सूरत कुछ फेर फार से लिखी है (उन के समय की साइक्लोपीडिया देखो)।

ऊपर जो **अंक** लिखे गए हैं उन में ७ और सत्तर के एक ही शब्द हैं, समझ पड़ता है कि किसी एक में जरूर गलती है।

ग्रीस देश के अंक।

ग्रीस देश में जो रहते हैं उन्हें **ग्रीक** कहते हैं। वे लोग अपनी वर्णमाला के अक्षरों से अंक दिखलाते थे। जैसे—

α' = १, β' = २, γ' = ३, δ' = ४, ..., θ' = ९।
ι' = १०, κ' = २०, λ' = ३०, ...
ιγ' = १३, ιδ' = १४, ...
,θϡϙθ' = ९९९९।

यही रीति **आर्यभट** के ग्रंथ में भी पाई जाती है (गणकतरङ्गिणी देखो)

सब से ऊँचे हिंदू याने **ब्राह्मण** लोग अपने **धर्म** के बंधन से **अटक** और **कटक** के पार न गए और अब तक नहीं जाते। **वेद** में लिखा है कि **सरस्वती** नदी के पार न जाना चाहिए। **धर्मशास्त्रों** में लिखा है—

"अङ्गबङ्गकलिङ्गेषु सौराष्ट्रमगधेषु च।
तीर्थयात्रां विना गत्वा पुनः संस्कारमर्हति॥"

याने खाली सैर करने के लिये इन देशों में जाने से फिर से संस्कार (जनेऊ) करना चाहिए। 'अब्धौ यानं द्विजस्यैव' याने खाली **ब्राह्मण** के लिये समुद्रयात्रा मना है।

ब्राह्मण लोग अपने विद्यासंबंधि विचारों ही को सब से बड़ा धन मानते थे। इन के मत में संतोष ही सब से बड़ा धन है, उसी में सब से बढ़ कर सुख है (सन्तोषं परमं सुखम्)। इन सब के कहने का इतना ही प्रयोजन है कि **ब्राह्मण** लोग बाहर नहीं गए, विद्याभ्यास में लगे रहने से अपनी **शरीर** की बाहरी शक्ति को कम कर **क्षत्रिय** राजाओं के भरोसे निश्चिंत रहे। बाहर ही

के लोग सब बातों का पता लगाते लगाते यहाँ आने लगे। सब से पहले **अरब** के लोग और **ग्रीक** यहाँ आए। मेल जोल हो जाने से **हिंदुओं** ने बहुत बातें उन लोगों से और उन लोगों ने बहुत बातें **हिंदुओं** से सीखी।

बड़े **सिकंदर** बादशाह के समय **ग्रीस** के व्यापारी, पंडित, ... सभी **हिंदुस्तान** में आए। दो सौ वर्ष तक इस हमारे **पश्चिमोत्तर प्रदेश** (*United Provinces*) और **पंजाब** में ग्रीक लोग राज करते थे।

जैसे आज कल सैकड़ों **अँगरेजी** शब्द **हिंदुओं** में और सैकडों **संस्कृत-हिंदी** शब्द **अँगरेजों** में प्रचलित हैं इसी तरह उस समय **ग्रीक** और **हिंदुओं** के शब्द आपस में प्रचलित हुए।

जैमिनिन्यायमाला के १ अध्याय, ३ पाद, ६ अधिकरण में लिखा है—

"कल्प्यः पिकादिशब्दार्थो ग्राह्यो वा म्लेच्छरूढितः।
कल्प्यो ह्यार्येष्वसिद्धत्वादनार्याणामनादरात्॥
ग्राह्या म्लेच्छप्रसिद्धिस्तु विरोधादर्शने सति।
पिकनेमादिशब्दानां कोकिलाद्यर्थता ततः॥"

इस की टीका में **माधवाचार्य** लिखते हैं—

"...... कल्प्यमानादव्यवस्थितादर्थाद्वरं म्लेच्छरूढिः। तस्मादनार्यप्रसिद्ध्या **पिकः कोकिलः**। **नेम**शब्दोऽर्धवाची। **तामरस-शब्दः** पद्मवाचीत्येवं द्रष्टव्यम्।"

फारसी में **नीम** आधे को कहते हैं उसी को **जैमिनि** ने **'नेम'** कहा है। पर **पिक** (कोयल) और **तामरस** (कमल) के लिये मैंने यहाँ के कई एक **मौलबिओं** से पूछा पर उन लोगों ने यही कहा कि हमें **फारसी** या **अरबी** में **पिक** (कोयल) और **तामरस** (कमल) नहीं मिलता। कई एक

यूरप के लोगों से भी पूछा कि शायद ये **ग्रीक** शब्द हों पर वहाँ भी पता न लगा। **पिक** और **तामरस** के **म्लेच्छ** शब्द होने में संशय नहीं क्योंकि ऐसा न होता तो **जैमिनि** क्यों लिखते। जैमिनि के समय में ये **म्लेच्छ** शब्द जरूर प्रसिद्ध थे, पर बात पुरानी पड़ जाने से इस समय पता नहीं लगता है, कि ये शब्द किस **म्लेच्छ**भाषा के हैं।

कस्तूरी, खलीन (लगाम), **इत्थम्** (इस तरह), **मिलिन्द** (भ्रमर), **दीनार** (अशर्फी), **मय, यवन, मणित्थ,** ..., (गणकतरङ्गिणी देखो) **ग्रीक** लोगों से **हिंदुओं** में आए।

इंडिया (सैन्धव), **ब्रिज** (भूर्ज), **पिपर** (पिप्पली), ..., ये हिहुओं के शब्द **सिकंदर** के पहले **पर्सियन** होते हुए कुछ कुछ उच्चारण में भेद होते होते **ग्रीक** लोगों में प्रचलित हुए।

कप्पूर, (*Kappura*) (कर्पूर), **कोष्टस** (*Kostas*) (कुष्ठी=कोढी), **ताल** (*Tala*), **देव** (*Deva*), ..., ये **संस्कृत** शब्द आपस के मेल जोल से **ग्रीक** लोगों में प्रचलित हुए।

हिंद के व्यापारी पहले पहल **पर्सिया** के **बबेरू** में जिसे पुराने जमाने में वहाँ के लोग **बबिरू** (*Babiru*) कहते थे **मोरैले** बेंचने के लिये ले गए थे फिर वहाँ के व्यापारी उन को मोल ले कर उधर जहाँ बेंचे वहाँ **मोरैले** को लोग **बबेरू** की चिडिया कहने लगे। बौद्धों में भी बहुत जातकों में से एक **'बबेरुजातक'** है जिस पर **सन् ५ ई.** में **बुद्धघोष** ने एक टीका बनाई है।

बाइबिल में भी लिखा है कि **सुलेमान** के समय में **फोनिसियंस** (*Phoenicians*) बहुत चीजों के साथ **आफिर** (*Ophir = Abhira*) से **मोरैले** भी लाए थे।

"For the king had at sea a navy of Tar-

*shish with the navy of *Hiram: once every three years came the navy of Tarshish bringing gold and silver, ivory, and apes, and peacocks."*

1 kings. 10:22. & 2 Chronicles 9:21.

आपस का मेल जोल बहुत पुराने समय से चला आता है। **पाणिनि**-अष्टाध्यायी के **पातञ्जलमहाभाष्य** में लिखा है—

"**शवति**र्गतिकर्मा **कम्बोजे**ष्वेव भाषितो भवति विकार एवैनमार्या भाषन्ते **शव** इति। **हम्मतिः** सुराष्ट्रेषु **रंहतिः** प्राच्यमध्यमेषु गमिमेव त्वार्याः प्रयुञ्जते। **दाति**र्लवनार्थे **प्राच्येषु दात्र**मुदीच्येषु।"

याने **कम्बोज** में चलने को **शवति**, कहते हैं आर्य लोग विकार याने मुर्दे को **शव** कहते हैं। **सुराष्ट्र** में चलने को '**हम्मति**' और पूर्वमध्यम में '**रंहति**' कहते हैं। पूर्व में **लवन** को '**दाति**' और उत्तर में '**दात्र**' कहते हैं। उसी के आगे फिर **महाभाष्य** में लिखा है—

"एकैकस्य हि शब्दस्य बहवोऽपभ्रंशाः। तद्यथा। **गौ**रित्यस्य शब्दस्य **गावी गौणी गोता गोपोत**लिकेत्येवमादयोऽपभ्रंशाः।"

याने एक '**गौ**' शब्द के **गावी, गौणी, गोता, गोपोतलिका**, ..., अपभ्रंश हैं। ये अपभ्रंश शब्द कहाँ कहाँ बोले जाते थे इसका पता लगाना अब कठिन है। पर इस में संशय नहीं कि उस समय भी **हिंदुस्तान** में भिन्न भिन्न भाषा थी, खाली **आर्य** लोगों में संस्कृत का प्रचार था।

आर्य लोगों के देश की सीमा **मनु** ने लिखी है।

सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्।
तं देवनिर्मितं देशमार्यावर्त्तं प्रचक्षते॥
(मनुस्मृ. अध्याय. २ श्लो. १७)

* Hiram was king of Tyre, a city of Phoenicia, See 1 kings 5:1 etc.
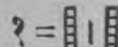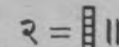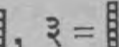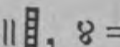
जब से हिंदुस्तान में **ग्रीक** लोग आए तभी से यहाँ **फलित-ज्यौतिष** का प्रचार फैला। **फलित** ही में बहुत से **ग्रीक** और **अरबी** के शब्द पाए जाते हैं। (बृहज्जातक और नीलकंठी देखो)। फलित के प्रभाव से **हिंदुस्तान** ऐसा दब गया कि जौं आज से फलित की ओर पीठ दे कर **गणित** को देखने लगें तो शायद हजारों वर्ष में **यूरप** की बराबरी में आवे।
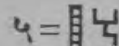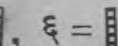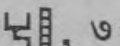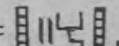
यह काल की महिमा है कि जिस देश के **धूर** पर के **अंक** से सारे देश के लोग **पंडित** हो गए और होते जाते हैं उस देश के **पंडित धूर** में मिले जाते हैं तो भी दिन रात **घमंड-नशे** में चूर हैं।
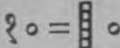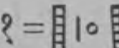
जैसे यहाँ स्त्रियों के बीच **यंत्र-मंत्र** का प्रभाव है उस से सौगुना स्त्री-पुरुषों में **फलित-ज्यौतिष** का प्रभाव है। जिस **गणित** के आधार से **फलित** जी रहा है उसे लोग दिनों दिन भूलते जाते हैं। **अँगरेज़ी** में बी. ए., एम्. ए. तक लोग खाली पास होने के लिये गणित पढ़ते हैं। पास हो जाने पर हजारों में से बिरला कोई ऐसा होगा जो गणित की चर्चा करता हो।
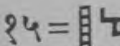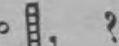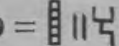
फलित को **कृत्या** समझना चाहिए। यह **यूरप** में भी **क्यार्डन, केप्लर**,… के गले में लटकती थी।

साबिअन (*Sabæan*) लोगों के अंक।

१ = ▯|▯, २ = ▯||▯, ३ = ▯|||▯, ४ = ▯||||▯,
५ = ▯ⴗ▯, ६ = ▯|ⴗ▯, ७ = ▯||ⴗ▯, ▯∩ⴗ▯, ...,
१० = ▯∘▯, ११ = ▯|∘▯, १२ = ▯||∘▯, ...,
१५ = ▯ⴗ∘▯, १७ = ▯||ⴗ∘▯, १८ = ▯|||ⴗ∘▯,
१९ = ▯||||ⴗ∘▯, २० = ▯∘∘▯, २२ = ▯∩∘∘▯, ...,

२५=▮५००▮, ३०=▮०००▮, ४०=▮००००▮,...,

४७=▮‖५००००▮, ५०=▮७▮, ६०=▮ठ▮,...,

६३=▮‖‖ ठ▮, १००=▮ब▮,▮।▮, १०००=▮ऩ▮,

३०००=▮‖‖▮, ४०००=▮ऩऩऩऩ▮,

अरबी का / = ऩ = अलिफ । **अरबी** का ⅄ = ५ = गैन।

१–४ इस के और **एजिप्ट** के एक ही हैं, भेद इतना ही है कि यहाँ सब दो **खंभे** के भीतर हैं । **साबिअन** लोग **अरब** में सन् १ ई० में थे ।

रोमन के अंक ।

१=I, २=II, ३=III, ४=IIII या IV, ५=V, ६=VI, ७=VII, ८=VIII, ९=IX, १०=X, ५०=L, १००=C, ५००=IↃ या इसकी बिगड़ी सूरत D, १०००=CIↃ, ५०००=IↃↃ, १०००००=CCIↃↃ, या शिर पर तिरछी रेखा कर देने से सब संख्या हजार गुनी हो जाती हैं जैसे $\bar{I}$=१००० । $\bar{V}$=५०००,... । १००० इस के लिये M और भी एक संकेत है ।

पहली चार संख्या एक **पंजे** की चार खडी अँगुलिओं से बनी हैं । पाँच खड़े एक पंजे से, उस के आगे एक, दो, तीन के मिलाने से ६–८, दश दो पंजों के मिलाने से और दश की बाईं ओर एक रख देने से ९ बना है । कहीं कहीं पुराने लेखों में XX=✗=२०, XXX=✗=३० ।

चीन के अंक ।

चीन में तीन प्रकार के अंक हैं । पहले में →, दूसरे में 亖 और तीसरे में / ऐसा एक लिखा जाता है । अंक और

शब्द नीचे लिखे हैं ।

१ = → 壹 〡 = *Uay* = याय् ।
२ = 二 貳 〢 = *Urh* = उर्ह ।
३ = 三 參 〣 = *San* = सन् ।
४ = 四 肆 〤 = *See* = सी ।
५ = 五 伍 〥 = *Woo* = वू ।
६ = 六 陸 〦 = *Lō* = लो ।
७ = 七 柒 〧 = *Tsē* = त्से ।
८ = 八 捌 〨 = *Pā* = पाँ ।
९ = 九 玖 〩 = *Keeú* = क्यू ।
१० = 十 拾 〸 = *Chē* = चे ।
१०० = 百 百 = *pē* = पे ।
१००० = 千 千 = *Tsiīn* = त्सींयन् ।
१०००० = 萬 万 = *Wan* = वान् ।
१००००० = 億 亿 = } *Che Wan* } चे वान् ।
१०००००० = 兆 兆 = *Tcáo* = ट्को ।
१००००००० = 京 = *King* = किंग् ।
१०००००००० = 垓 = *Kai* = कै ।

तिब्बत में अंकों के शब्द ।

१ = (*Cheic*) = चेइक । ६ = (*Tru*) = टू ।
२ = (*Gnea*) = ग्नेआ । ७ = (*Toon*) = टून ।
३ = (*Soom*) = सूम । ८ = (*Ghe*) = घे ।
४ = (*Zea*) = ज़ेआ । ९ = (*Goo*) गू ।
५ = (*Gna*) = ग्ना । १० = (*Chu Tambha*) चूतंभ ।
११ = (*Chucheic*) = चु चेइक ।

१२ = (*Chugnea*) = चू ग्नेआ ।

... ...

२० = (*Gnea Chutambha*) = ग्नेआ चूतंभ ।

२१ = *Gnea cheic*) = ग्नेआ चेइक ।

... ...

२९ = (*Gnea Goo*) = ग्नेआ गू ।

३० = (*Soom Chutambha*) = सूम चूतंभ ।

३१ = (*Soom cheic*) = सूम चेइक ।

... ...

इस में ग्यारह से उन्नीस तक की संख्याएँ दश के पहले खंड **चू** और एक, दो, ... के नाम से बनाई गई हैं, २० दो और दश से; बाकी २१, २२, ... २९ दहाई और एकाई के अंकों के नाम से । इसी तरह आगे भी सब संख्याएँ बनी हैं ।

इस तरह स्थानों के अंकों से संख्याओं को दिखलाना यह बहुत अच्छी और सहज रीति है पर न जानें लोगों ने पीछे से इस रीति को क्यों छोड़ दिया । **दूसरे आर्यभट** ने भी अपने ग्रंथ में इसी तरह की संख्याओं को दिखलाया है (मेरा छपवाया महासिद्धान्त देखो) । **दक्षिण** में बहुत जगह अब तक **दूसरे आर्यभट** के ऐसा **वर्णमाला** के अक्षरों से संख्याओं को दिखलाते हैं ।

बहुत लोग कहते हैं कि **यूरप** के लोग संख्या लिखने की रीति **तिब्बत** से सीखी है । जौं यह बात होती तो उनके यहाँ ११–१९ के लिये सब जगह **तिब्बत** के ऐसा पहले १० फिर १–९ के शब्द आते । और २१–२९ भी **तिब्बत** के ऐसे बोले जाते ।

बस्के (*Basque*) में १ = *Bat* = बाट्, २ = *Bi* = बि है । **हिंदी** भाषा के **पिंगल ग्रंथ** और **काव्य** में भी 'बि' से दो लेते हैं । **बाबा दीनदयालजी** ने अपने अनुरागबाग में एक जगह '**बिबिकी** की पर' (बिबि = २×२ = ४, बिबिकी = चारकी = पालकी) लिखा है । **हिंदी पिंगल** में बहुत जगह 'बि' आता है । मैं समझता हूँ कि संस्कृत 'द्वि' के द के निकल जाने से 'वि' रह गया जिसे पीछे से **हिंदी** में 'बि' कहने लगे ।

पुरानी **हिब्रू** वर्णमाला में २२ अक्षर हैं । उनके यहाँ भी अक्षरों से संख्या दिखाई जाती थी । वे लोग **अलेफ** से **तेथ्** तक नव अक्षरों से १–९ संख्या लेते थे फिर **जाद** = י = १० । **काफ** = כ = २०, ..., उनके यहाँ हम लोगों से उलटी चाल पाई जाती है । जैसे—

१ = א = अलेफ, २ = ב = **बेथ्** । और २१ = א ב यह हम लोगों से उलटी चाल है । उनके यहाँ ४०० से ऊपर की संख्या-ओं के लिये कोई चिन्ह नहीं था । ४०० ऊपर की संख्याएँ कई संख्याओं के जोड से दिखलाते थे । जैसे १०० = ק = कफ् । २०० = ר = रे । ३०० = ש = शीन । ४०० = ת = तो । ५०० = ק ת״ । ६०० = ר ת״ । ७०० = ש ת״ । ८०० = ת ת״ । ९०० = ק ת ת״, ... ।

पुरानी **अरबी** की **वर्णमाला** में २२ अक्षर हैं वे **सिरिआक्** (*Syriac*) के अक्षरों से बने हैं । आज कल की **वर्णमाला** में २८ अक्षर हैं । यह **वर्णमाला** लगभग सन् ८०० ई. से प्रचलित हुई है । इनके यहाँ भी **हिब्रू** के ऐसा अक्षरों से संख्या दिखलाई गई है । इनके यहाँ १००० तक चिह्न हैं आगे पिछली संख्याओं के जोड से संख्याएँ लिखी जाती हैं । जहाँ जहाँ **सेमेटिक** (*Semitic*) अक्षर प्रचलित हैं सब जगह अक्षरों से संख्याएँ दिखाई गई हैं ।

रसियन (*Russian*) **वर्णमाला ग्रीक** अक्षरों से बनी है । उसमें ३६ अक्षर हैं । वहाँ भी अक्षरों से संख्याएँ दिखाई

गई हैं। उनके यहाँ १०००० तक चिह्न हैं फिर अक्षरों में **ग्रीक** ऐसा स्वर लगा कर और संख्याएँ बनाई गई हैं। उनके यहाँ दश करोड से अधिक संख्या नहीं है। **बड़े पीटर** (*Peter the Great*) ने अपने समय में **हिंदुओं** के अंकों का प्रचार किया।

अशोक राजा के समय के अंक।

देखो २०० = १०० और दो के, ३०० = १०० और ३ के, ४०० = १०० और ४ के, ५०० = १०० और ५ के, ६०० = १०० और ६ के, ७०० = १०० और ७ के, २००० = १००० और २ के, ३००० = १००० और ३ के, ४००० = १००० और ४ के, ६००० = १००० और ६ के, ८००० = १००० और ८ के, १०००० = १००० और १० के, २०००० = १००० और २० के और ७०००० = १००० और ७० के मिलाने से बने हैं। ध्यान कर देखो तो मिलाने में लिखने या खोदनेवाले की गलती से कुछ कुछ मिली हुई संख्याओं की सूरत में फर्क है। खोदे हुए अंकों को फिर से ध्यान देकर देखना चाहिए।

संख्याओं के देखने से साफ है कि **अशोक** के समय **शून्य** नहीं था और न दशगुने स्थान के अनुसार लिखने की रीति थी।

इस में संशय नहीं कि सब जगह **अँगुलिओं** पर गिनती करने से दहाई प्रचलित हुई खाली दो चार जगह दहाई से घटती बढती हुई। जैसे फल बेचनेवालों में **गाही** और **कोरी** प्रचलित है। **न्यू ज़ी ल्यांडर** में ग्यारहगुने स्थान हैं वे लोग १२ को ११ + १, १३ को ११ + २, ··· और २२ को दो ग्यारह बोलते हैं।

१ अलग लगा हुआ पत्र देखो।

हिंदुस्तान में जस ग्यारह, बारह, ··· अठारह के बोलने में पहले एकाई और उसके बाद दहाई आती है, वैसी चाल सब जगह नहीं है। जैसे **ल्याटिन** में अठारह को *Deccem et octo* = १० + ८, **ग्रीक** में *O'k Too — kai — Seka* = ८ + १०, **फ्रेंच** में *Dix — Huit* = १० + ८, **ज़रमेन में** *Acht-Zehn* = ८ + १० ऐसा बोलते हैं। **अज़टेक** में अठारह को *CaXtulli-om-ey* = १५ + ३ ऐसा बोलते हैं।

पीछे लिख आए हैं कि **चीन** में सन् (*San*) = ३ और चे (*Che*) = १० है। इन को मिला कर वे लोग **चे-सन** से (१० + ३) तेरह लेते हैं। यह रीति **हिंदुओं** से उलटी है। और वे लोग **सन्-चे** से (३ × १०) तीस लेते हैं। यह रीति **हिंदुओं** की रीति से मिलती है। **संस्कृत** में कभी कभी **त्रिदश** से ३० लेते हैं।

व्यापारी लोग कहीं कहीं अपने खास लोगों में समझने के लिये और ही शब्दों से संख्याओं को बोलते हैं, जैसे **बनारस** के **दलाल**—

१ = साँग। २ = खान। ३ = एकवाई। ४ = फोक। ५ = बुध। ६ = डहक। ७ = पैंत। ८ = मंग। ९ = कोन ० = सलाह, ··· ऐसा कहते हैं।

संस्कृत में अंकों के शब्द और चिन्ह।

वैयाकरण लोग शब्द को **परब्रह्म** ऐसा अनादि मानते हैं इसलिये शब्दों के अवयव **अक्षर** भी अनादि हुए। पीछे से **ऋषिओं** ने दूसरे लोगों को समझाने के लिये उन **अक्षरों** को लिख कर दिखाने के लिये उनके चिह्न बनाए। उन्हीं चिह्नों को लोग उपचार से **अक्षर** कहते हैं इन्हीं **अक्षरों** को **लिपि** भी कहते हैं (इस ग्रंथ का पृ. ९–१० देखो)।

राजा **अशोक** के खंभों में खोदे हुए अक्षरों से जो कि **अँगरेजी राज** में **यूरप** के पंडितों की बड़ी कड़ी मेहनत से मिले और पढ़े गए, **यूरप** के पंडितों का अनुमान है कि सब से पुरानी **ब्राह्मी लिपि** है जो कि **अशोक** के समय से भी पहले की है। **बूलर** साहब के अनुमान से यह **ब्राह्मी** ईशा के **३००** **वर्ष** पहले से **हिंदुस्तान** में प्रचलित थी।

पटने के **मौर्यवंशवाले** राजाओं के यहाँ भी इसी में लिखा पढ़ी होती थी।

बूलर साहब ने यह भी सिद्ध किया है कि यह **ब्राह्मणों** की बनाई है; इसकी जड़ **सेमेटिक** (*Semitic*) नहीं है।

इस **लिपि** के प्रचार होने के बाद **पंजाब** की ओर कुछ **अरबी** और कुछ **ब्राह्मी** के मेल से **खरोष्ठी** जिसे जैन लोग **खरोट्ठी** कहते हैं, बनी। यह **अरबी** की चाल से **दाहिनी** ओर से **बाईं** की ओर लिखी जाती थी। (*See on the origin of the Indian Brahma Alphabet by G. Bühler, second revised editin of Indian studies, No.* III, *Strassburg. kortj. Trübner. 1898*)।

जान पड़ता है कि **ब्राह्मणों** ने निंदाबुद्धि से **अरबवालों** को **खर** याने **गदहा** कहा है इस लिये उन **गदहों** के ओठ से जो शब्द निकलते थे वे जिस **लिपि** में लिखे जायँ वह **खरोष्ठी** कहलाई। **ब्राह्मण** लोग **गदहे** और **मुसल्मान** दोनों से छू जाने में अपने को **नापाक** (अपवित्र) समझते हैं; कपड़े समेत स्नान करने से शुद्ध होते हैं। **ब्राह्मणों** ही के प्रभाव से **खरोष्ठी** दब गई और **ब्राह्मी** सब जगह फैली।

आदमी की **खोपड़ी** में जो माथे की ओर **जोड़** के निशान हैं उन्हें **हिंदू लोग ब्रह्मलिपि** कहते हैं। **संस्कृत** के

बड़े बड़े पुराने ग्रंथों में लिखा है कि आदमी जन्म लेकर जो सुख या दुःख भोगते हैं सब उनके मस्तक के ऊपर **ब्रह्माक्षर** में लिखे रहते हैं। **श्रीहर्ष** ने अपने नैषधकाव्य के १ सर्ग के १९ श्लोक में लिखा है—

"अयं दरिद्रो भवितेति **वैधसीं लिपिं** ललाटेऽर्थिजनस्य जाग्रतीम्।
मृषा न चक्रेऽल्पितकल्पपादपः प्रणीय दारिद्र्यदरिद्रतां नृपः॥"

तुलसीदास ने भी **रावण-अंगद** के संवाद में अपने **लंकाकांड** में लिखा है—

"जरत बिलोकेउँ जबहि **कपाला**। **बिधि के लिखे अंक** निजभाला।
नर के कर आपन बध बाँची। हँसेउँ जानि **बिधि**-गिरा असाची॥"

इस लिये मुझे निश्चय है कि किसी **महर्षि** के हृदय में आदमी की **खोपड़ी** के जोड़ों के चिह्न देख कर उन्हीं के अनुसार **अक्षर** बनाने का विचार उत्पन्न हुआ और बना लेने पर **ब्रह्मलिपि** के समान होने से उस का नाम **'ब्राह्मी लिपि'** रक्खा गया। **ब्राह्मी लिपि** बनाने से वह **महर्षि** इस संसार में सचमुच दूसरा **ब्रह्मा** ही हो गया जिस की कीर्त्ति सारे संसार में अचल हो कर फैली है।

अशोक के समय इस **ब्राह्मी** में बारह **स्वरों** के चिह्न थे जो कि **व्यंजनों** में मिलाए जाते थे। इसी से **प्राकृत** में **बाराखड़ी** (=**बारह-अक्खरी**=द्वादशाक्षरी) कही जाती है। इस **ब्राह्मी** में व्यंजनों के शिर पर **कान** के ऐसा बाईं और दहिनी ओर जो मात्रा लगाई जाती थी उसे **प्राकृत** में **कन्न** (कर्ण) कहते थे और दूसरी मात्रा जो **खड़ी रेखा** ऐसी लगाई जाती थी उसे **मात्ता** या **मत्ता** कहते थे।

ये बातें पुरानी पड़ गईं अब **अक्षर** और मात्राओं की सूरत भी बदल गई हैं तो भी **गुरु** लोगों से हम लोगों ने इस तरह से **बाराखड़ी** पढ़ी है—

क बिन कन्ने क। कन्नुन का। रेसों कि। दीर्गो की। ताड़े कु। बाड़े कू। एक मत के। दो ले कै। कन मत को। दुर्माती काना कौ। मस्ते कं। दासी कः।

बिन कन्ने = विना कर्णेन = कान के विना। कन्नुन का = कर्णेन = कान के समेत, का। रेसों = ह्रस्व = छोटा। दीर्गो = दीर्घ = बड़ा। ताड़े = तले = नीचे। बाड़े = बार्धक्य = बड़ी (मात्रा से)। एकमत = एकमात्रया = एक मात्रा से। दो ले द्वे (मात्रे) आलाय = दो मात्रा लेकर। कन मत = कर्णेन मात्रया च = एक कर्ण और एक मात्रा से। दुर्माती काना = मात्राद्वयेन कर्णेन च = दो मात्रा और एक कर्ण से। मस्ते = मस्तके = माथे के ऊपर (की बिंदु से)। दासी = दक्षिणे (अक्षरस्य) = दहिनी ओर (दो बिंदु रखने से। इस तरह सब संस्कृत शब्द के अपभ्रंश जान पड़ते हैं। **बनारस** की ओर **गुरु** लोग अब तक इसी चाल से लडकों को मात्रा लगाने में पढ़ाते हैं। **पटना, दरभंगा,**… में **बाराखड़ी** पढ़ाने में कुछ कुछ शब्दों में हेर फेर है पर सब की जड़ ऊपर लिखे हुए संस्कृत के शब्द हैं।

बनारस की ओर **संस्कृत** पढ़नेवाले लडके जिस दिन **अक्षरारंभ** करते हैं उस दिन गुरु सब से पहले **'श्रीगणेशाय नमः'** लिखवाते और लडके से इसी का उच्चारण करना सिखाते। गुरुलोग **वाल्मीकि रामायण** का पहला श्लोक—

"मा निषाद प्रतिष्ठास्त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

लडकों से कंठ कराते हैं; जो लडका सब से पहले कंठ कर सुना देता है उसे समझते हैं कि यह पढ़ाने से जल्द **पंडित** होगा।

कहावत है कि जब **व्यास**जी **महाभारत** बनाने लगे उस समय **गणेश** ही लिखने को तयार हुए इस लिये सब से भारी **लेखक** समझ कर लडकों से सब से पहले उन्हीं का नाम लिखवाते हैं और उन्हीं की **पूजा** करवाते हैं।

जो लडके **चटशाले** में **गुरु** के यहाँ हिंदी, कैथी,… सीखने जाते हैं **गुरु** सब से पहले उन से **'ओ ना मा सी धं'** लिखवाते हैं। यह **बौद्धों** की रीति आज तक चली जाती है। यह **'ॐ नमः सिद्धम्'** का **अपभ्रंश** है। **पतञ्जलि** ने अपने **व्याकरण** के **महाभाष्य** में भी लिखा है—

"माङ्गलिक आचार्यो महतः शास्त्रौघस्य
मङ्गलार्थं **सिद्धशब्द**मादितः प्रयुङ्क्ते।"
"पश्यति त्वाचार्यो मङ्गलार्थश्च
सिद्धशब्द आदितः प्रयुक्तो भवति।"

अब जहाँ जहाँ **तहसीली स्कूल** जारी हुए हैं वहाँ वहाँ पुरानी रीति छूटती जाती है।

मेरी समझ में यह **ब्रह्मलिपि अशोक** के हजारों वर्ष पहले से **हिंदुओं** में प्रचलित थी और यह आदमी की खोपड़ी के **ब्रह्माक्षर** से बनाई गई इसी लिये इसका नाम **ब्राह्मी** पड़ा। उस समय इस में संस्कृत के ऋ, ॠ, ऌ, ॡ भी रहे होंगे पर जैसे आज कल **हिंदी,** कैथी,… में व्यवहार न होने से ये छोड दिए जाते हैं उसी तरह **अशोक** के समय **प्राकृत** में ये छोड दिए गए। **शारदातन्त्र** में **अक्षर** देवता माने गए हैं, अक्षरों के ध्यान भी लिखे हैं पर ध्यान और सूरत से कुछ भी मेल नहीं मिलता।

ब्राह्मी लिपि बनने के हजारों वर्ष पीछे **अशोक** के समय की **ब्राह्मी** कैसे अपनी असली सूरत में रह सकती है। **अशोक** ही के समय दश, बीस वर्ष आगे पीछे के **खंभों** पर जो **ब्राह्मी** पाई गई है उसकी सूरतों में भेद पाए जाते हैं फिर हजारों वर्ष का जहाँ बीच है वहाँ की क्या बात कही जाय।

अशोक के समय की **ब्राह्मी लिपि** की वर्णमाला जो

कालसीलेख से बनाई गई।

𑀅 𑀆 𑀇 𑀉 𑀏 𑀑 = अ आ इ उ ए ओ।

𑀓 𑀔 𑀕 𑀖 (𑀗) = क ख ग घ ङ।

𑀘 𑀙 𑀚 𑀛 (𑀜) = च छ ज झ ञ।

𑀝 𑀞 𑀟 𑀠 (𑀡) = ट ठ ड ढ ण।

𑀢 𑀣 𑀤 𑀥 (𑀥) 𑀦 = त थ द ध न।

𑀧 𑀨 𑀩 𑀪 𑀫 = प फ ब भ म।

𑀬 𑀭 𑀮 𑀯 𑀰 𑀱 𑀲 𑀳 = य र ल व श ष स ह। 𑀨 = फ़

𑀓𑁆𑀬 = क्य। 𑀔𑁆𑀬 = ख्य। 𑀕𑁆𑀬 = ग्य।…। 𑀝𑁆𑀲 = ट्स,……
𑀭𑁆𑀯 = र्व। 𑀭𑁆𑀲 = र्स। 𑀲𑁆𑀢 = स्त। 𑀧𑁆𑀭 = प्र। 𑀧𑁆𑀭𑀺 = प्रि।…

शिर की दाहिनि ओर — जैसे = 𑀓𑀸 का। शिर की दाहिनी ओर ⅃ जैसे 𑀓𑀺 = कि। शिर की दाहिनी ओर ⊥ जैसे 𑀓𑀻 = की। पैर के नीचे दहिनी ओर — या पैर में नीचे। जैसे 𑀓𑀼 = कु या 𑀕𑀼 = गु।

शिर की बाईं ओर — जैसे 𑀓𑁂 = के। शिर की बाईं ओर — और शिर की दहिनी ओर बाईं ओर वाली तिरछी रेखा से कुछ हट कर — जैसे 𑀓𑁄 = को या 𑀓𑁄 = को। शिर के ऊपर तनिक दहिनी ओर जैसै 𑀓𑀁 = कं।

राजा शिवप्रसादजी ने अपने **भूगोल** हस्तामलक में भूल से इसी **ब्रह्माक्षर** को **पाली** अक्षर लिखे हैं। उस **वर्ण-माला** में कई जगह गलती भी है।

पाँती सीधी करने के लिये जौं **ब्रह्माक्षरों** के शिर के ऊपर एक एक तिरछी रेखा लगा दो तो आज कल की **देवनागरी** लिपि के अक्षरों की बहुत सूरत मिल जाती हैं।

अशोक के समय की ब्राह्मी लिपि के अनुसार संस्कृत के एक, द्वि,……

		पहले अक्षर को कुछ बिगाड कर लिखने से
१ = 𑀏𑀓 = एक।		१ = 𑁒।
२ = 𑀤𑁆𑀯𑀺 = द्वि।	”	२ = 𑁓।
३ = 𑀢𑁆𑀭𑀺 = त्रि।	”	३ = 𑁔।
४ = 𑀘𑀢𑀼𑀭 = चतुर।	”	४ = 𑁕।
५ = 𑀧𑀁𑀘 = पंच।	”	५ = 𑁖।
६ = 𑀱𑀝 = षट्।	”	६ = 𑁗।
७ = 𑀲𑀧𑁆𑀢 = सप्त।	”	७ = 𑁘।
८ = 𑀅𑀱𑁆𑀝 = अष्ट।	”	८ = 𑁙।
९ = 𑀦𑀯 = नव।	”	९ = 𑁚।

सूरत देखने से साफ है कि **ब्रह्माक्षर** के ए, द्वि, त्रि,… अक्षरों की बिगड़ी सूरत ही धीरे धीरे कुछ बदलते बदलते आज कल के संस्कृत के १, २, ३,… हैं।

संस्कृत में —

११ = एकादश। १२ = द्वादश। १३ = त्रयोदश। १४ = चतुर्दश। १५ = पञ्चदश। १६ = षोडश। १७ = सप्तदश। १८ = अष्टादश। १९ = ऊनविंशति। २० = विंशति। पाणिनि के व्याकरण से एकश्च दश च एकादश। द्वौ च दश च द्वादश।……षट् च दश च षोडश। अष्ट च दश च अष्टादश। ये बनते हैं पर नव च दश च नवदश ऐसा पाणिनि ने नहीं बनाया है। उन्नीस को पाणिनि एकेन न विंशतिः एकान्नविंशतिः या एकोनविंशतिः ये दो रूप बनाते हैं। एक को ऊपर से बोल देने से ऊना (एकेन) विंशतिः ऊनाविंशतिः इस छोटे शब्द से भी १९ को लेते हैं। यजुर्वेद में 'नवदश' से भी १९ लेते हैं (यजुर्वेदसंहिता का ९, १४ अध्याय देखो)।

अँगरेजी में भी ११–१९ बोलने में संस्कृत ही के ऐसा पहले एकाई तब दहाई आती है। १९ के बोलने में वेद की रीति ली गई है। संस्कृत में 'नवदश' को छोड कर ऊनविंशति लिया गया है।

२० के लिये **संस्कृत** और अँगरेजी में बोलने की एक ही चाल है जिस का 'दो दश' (*Twenty*) अर्थ है।

२१ = एकविंशति। २२ = द्वाविंशति। २३ = त्रयोविंशति। २४ = चतुर्विंशति। २५ = पञ्चविंशति। २६ = षड्विंशति। २७ = सप्तविंशति। २८ = अष्टाविंशति। २९ = ऊनत्रिंशत्। ३० = त्रिंशत्। यहाँ भी पहले एकाई तब दहाई बोलते हैं। वेद में २९ के लिये 'नवविंशति' आता है **अँगरेजी** में बोलने में इस से उलटी चाल है। ३० के बोलने में दोनों जगह 'तीन दश' (*Thirty*) एक चाल है।

३१ = एकत्रिंशत्। ३२ = द्वात्रिंशत्। ३३ = त्रयस्त्रिंशत्। ३४ = चतुस्त्रिंशत्। ३५ = पञ्चत्रिंशत्। ३६ = षट्त्रिंशत्। ३७ = सप्तत्रिंशत्। ३८ = अष्टत्रिंशत्। ३९ = ऊनचत्वारिंशत्। ४० = चत्वारिंशत्। ४१ = एकचत्वारिंशत्। ४२ = द्विचत्वारिंशत्। ४३ = त्रिचत्वारिंशत्। ४४ = चतुश्चत्वारिंशत्। ४५ = पञ्चचत्वारिंशत्। ४६ = षट्चत्वारिंशत्। ४७ = सप्तचत्वारिंशत्। ४८ = अष्टचत्वारिंशत्। ४९ = ऊनपञ्चाशत्। ५० = पञ्चाशत्। ५१ = एकपञ्चाशत्। ५२ = द्विपञ्चाशत्। ५३ = त्रिपञ्चाशत्। ५४ = चतुःपञ्चाशत्। ५५ = पञ्चपञ्चाशत्। ५६ = षट्पञ्चाशत्। ५७ = सप्तपञ्चाशत्। ५८ = अष्टपञ्चाशत्। ५९ = ऊनषष्टि। ६० = षष्टि। ६१ = एकषष्टि। ६२ = द्वाषष्टि। ६३ = त्रिषष्टि। ६४ = चतुःषष्टि। ६५ = पञ्चषष्टि। ६६ = षट्षष्टि। ६७ = सप्तषष्टि। ६८ = अष्टषष्टि। ६९ = ऊनसप्तति। ७० = सप्तति। ७१ = एकसप्तति। ७२ = द्विसप्तति। ७३ = त्रिसप्तति। ७४ = चतुःसप्तति। ७५ = पञ्चसप्तति। ७६ = षट्सप्तति। ७७ = सप्तसप्तति। ७८ = अष्टसप्तति। ७९ = ऊनाशीति। ८० = अशीति। ८१ = एकाशीति। ८२ = द्व्यशीति। ८३ = त्र्यशीति। ८४ = चतुरशीति। ८५ = पञ्चाशीति। ८६ = षडशीति। ८७ = सप्ताशीति। ८८ = अष्टाशीति। ८९ = नवाशीति। ९० = नवति। ९१ = एकनवति। ९२ = द्विनवति। ९३ = त्रिनवति। ९४ = चतुर्नवति। ९५ = पञ्चनवति। ९६ = षण्णवति। ९७ = सप्तनवति। ९८ = अष्टनवति। नवनवति।

पाणिनि के **व्याकरण** से ४९ = एकान्नपञ्चाशत् = एकोनपञ्चाशत् होता है। **अँगरेजी** में **संस्कृत** की बोली से उलटी चाल है पर ३०, ४०, ५०, ६०, ७०, ८०, और ९० की बोली में एक ही चाल है। दोनों जगह तीन दहाई, चार दहाई, ... नव दहाई की चाल से शब्द बनाए गए हैं।

ऊपर लिखे हुए **संस्कृत** शब्द के अपभ्रंश **प्राकृत** के १, २, ३, ... के शब्द हैं और फिर **प्राकृत** से बिगड कर आज कल की **हिंदी** के १, २, ३, ... के शब्द प्रचलित हैं।

संस्कृत में १० को 'पंक्ति' भी कहते हैं **पाणिनि** के व्याकरण से 'पंक्तिविंशतित्रिंशचत्वारिंशत्पञ्चाशत्षष्टिसप्तत्यशीतिनवतिशतम् ५।१।५९' इस सूत्र से ये सब शब्द **रूढि** याने स्वयं सिद्ध हैं।

बोलने की चाल से लिखने की चाल उलटी।

संस्कृत में **दूसरे आर्यभट** की रीति छोड कर और पीछे के सब **ज्यौतिषी** संख्या बोलने की चाल से लिखने में उलटी चाल चलते हैं। याने जैसे बोलने में 'द्वादश' में पहले **दो** तब **दश** कहते हैं पर लिखने में पहले दहाई उसके बाद एकाई '१२' लिखते हैं। इस तरह से दहनी ओर से बाईं ओर एकाई, दहाई, सैकडा, ... के अंकों को लिख कर संख्या दिखलाना यह रीति वेदों में नहीं

पाई जाती। वेदों में सौ से ऊपर की संख्याएँ कई टुकड़े में लिखी गई हैं।

त्रिशता न शंकवोऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचला सः (ऋ. सं. १, १६४, ४८) यहाँ ३६० संख्या ३०० और ६० दो टुकड़े में पढ़ी गई है।

याजुष ज्यौतिष वेदांग में ३६६ संख्या ३०० और ६६ दो टुकड़े में पढ़ी गई है। १८३० संख्या ३६६ और ५ के गुणन रूप में पढ़ी गई है (या. ज्यौ. श्लो. २८)।

सोमाकर भाष्य में जहाँ जहाँ **गर्ग** के वचन हैं सब जगह सौ से ऊपर की संख्याएँ दो दो टुकड़े में कही गई हैं—

'त्रिंशचाष्टादशशती' = ३० + १८०० = १८३०। 'चतुर्विंशं शतात्मकम्' = २४ + १०० = १२४। 'द्वाविंशं शतं' = २२ + १०० = १२२। 'अष्टादशशती षष्ट्यधिका' = १८०० + ६० = १८६०। 'द्वादशं शतं' = १२ + १०० = ११२। 'दशोत्तरे द्वे सहस्रे' = १० + २००० = २०१० संख्याएँ ली गई हैं (मेरा छपवाया **सोमाकर** भाष्य देखो)।

वाल्मीकिरामायण में—

'दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च'

= १० × १००० + १० × १०० = १०००० + १००० = ११०००।

महाभारत स्त्रीपर्व अध्याय २६ श्लो. ९—

"दशायुतानामयुतं सहस्राणि च विंशतिः।

कोट्यः षष्टिश्च षट् चैव येऽस्मिन् राजन् मृधे हताः॥" इस में १०×१०००० + १०००० + २०×१००० + ६०×१०००००० + ६ × १०००००० = १००००० + १०००० + २०००० + ६००००००० + ६०००००० = ६६०१३०००० । इस तरह से ४ टुकड़े में संख्या लिखी गई है।

आर्यभटीय के गणितपाद श्लो. १०—

"चतुरधिकं शतमष्टगुणं द्वाषष्टिस्तथा सहस्राणाम्" इस में ६२८३२ को ८ × १०४ + ६२ × १००० = ८३२ + ६२००० = ६२८३२, इस तरह से पढ़ा है।

"षष्ट्यब्दानां षष्टिर्यदा व्यतीतास्त्रयश्च युगपादाः" इस में ३६०० इस संख्या को ६० × ६० = ३६०० इस तरह से पढ़ा है पर भगणों में 'ख्युघृ', ... में पहले छोटी संख्या फिर उस से बड़ी संख्या, ... इस क्रम से पढ़ा है। यही रीति सिंहलिओं में है पर उन के यहाँ ९९९९ इस से अधिक संख्या उन के बीस संकेतों से नहीं लिखी जा सकती। उन के यहाँ शून्य भी नहीं है।

मनुस्मृति में २४ को 'त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षां वा' इस से ३×८ इस तरह से लिखा है।

भट्टोत्पल ने **बृहत्संहिता** की टीका में जो **पुलिश** और **सूर्यसिद्धान्त** के वचन लिखे हैं सब में एक, दश, शत,... स्थानों के क्रम से संख्याएँ पढ़ी गई हैं। **लल्ल, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, भट्टबलभद्र,** ...सब आज कल की प्रसिद्ध रीति **'अंकानां वामतो गतिः'** से **अंक** लिखते हैं।

दूसरे **आर्यभट** ने अपने पाटीगणितअध्याय में **'अंकानां वामतो गतिः'** इसी नियम से संख्याओं को लिखा है। (मेरा छपवाया महासिद्धान्त देखो)।

जैमिनिसूत्र में अक्षरों से संख्या ली गई है। पर सब आज कल की प्रसिद्ध **वामगति** ही से लिखी गई हैं।

बलभी राजा के **ताम्रपत्र** जो पाए गए हैं, जिन में **खरोष्ठी** और **ब्राह्मी** के मिले-जुले **अक्षर** हैं। उन में जो **शक** काल की संख्याएँ हैं सब **'अंकानां वामतो गतिः'** रीति से लिखी हैं। भेद इतना ही है कि **शून्य** के न होने से दश, बीस,...,

१००, २००,··· सब के लिये जुदे जुदे चिह्न बनाए गए थे पर छोटी संख्या की बाईं ओर बड़ी संख्या लिखने की वही रीति थी जो कि आज कल **'अंकानां वामतो गतिः'** यह प्रचलित है।

शिलादित्य के	१	ताम्रपत्र में	२८६ शक	= स. ३६४ ई.
,,	२	,,	३५६ श.	= स. ४३४ ई.
धरसेन के	२	,,	२७२ श.	= स. ३५० ई.
,,	४	,,	३२६ श.	= स. ४०४ ई.

(The Indian Antiquary. Feb. 2, 1872)

इन सब बातों से निश्चय होता है कि **'अंकानां वामतो गतिः'** की चाल बहुत दिनों से प्रचलित थी पर **शून्य** और दहाई, सैकडा,··· के स्थानों पर से १–९ इतने ही चिन्हों से संख्या दिखाने की रीति ४२० शाके के लगभग **हिंदुओं** में सब जगह फैली। उसी समय से **शाका** भी सब जगह अच्छी तरह से फैल गया। **आर्यभट** ने अपने जन्मकाल को **शाके** में नहीं लिखा पर उस समय **शाका** उन की ओर प्रसिद्ध हो गया था। **आर्यभट** के पहले ही से दश, शत,··· स्थानों के नाम भी बन गए थे। **आर्यभट** के 'स्वद्विनवके स्वरा नव' इस से मालूम होता है कि उन के समय के पहले ही **शून्य** बन गया था।

दरपन में जो सामने **प्रतिबिम्ब** देख पडता है उस का बायाँ भाग हमारे दहिने भाग की ओर रहता है उसी तरह हमारे सामने **जमीन, पटरे** या **कागज** पर लिखी संख्या का बायाँ भाग हमारे दहिने भाग के सामने रहेगा, जैसे **३२५** में तीन की बाईं ओर **दो** और दो की बाईं ओर **पाँच** है।

यह **हिंदुस्तान** विद्या में सब से श्रेष्ठ गिना जाता है उस में भी **बनारस** को सब से उत्तम **विद्या–पीठ** कहते हैं। **बलराम** और **कृष्ण** भी **बनारस** के पढे **सान्दीपनि ऋषि** से

पढे थे[1]।

यहाँ के लोग छोटी **सीता** को पहले और बडे **राम** को पीछे मिला कर **सीताराम** बोलते हैं पर व्यवहार में **राम** की बाईं ओर **सीता** को बैठाते हैं। इसी तरह **राधाकृष्ण, गौरीशंकर,**··· में भी बात है।

जैमिनिन्यायमालाविस्तर के आदि ही में **माधवाचार्य** ने लिखा है—

"राजसभायामेते तपस्विनः **पूज्या विप्रा दक्षिणभाग** उपवेशनीया एते च **भृत्या वामभाग** इति क्रमं करोति।"

याने बडे को दहिनी ओर और छोटे को बाईं ओर बैठाना चाहिए।

करोडपति से बाईं ओर **लखपति, लखपति** से बाईं ओर **हजारपति,**··· इस क्रम से बैठाने में ही आदर समझा जाता है इस लिये **करोड** से बाईं ओर **लाख, लाख** से बाईं ओर **हजार,**··· के अंक रक्खे गए पर बोलने में **सीताराम, राधाकृष्ण, गौरीशंकर,**··· के ऐसा पहले एकाई फिर दहाई,··· बोले जाने लगे।

मुनीश्वर ने **भास्कराचार्य** के **गणिताध्याय** के २८–२९ श्लोकों की टीका **मरीचि** में **कृष्णदैवज्ञ** का वचन लिखा है—

"अभ्यर्हितस्थानस्थस्य पङ्क्तौ पूर्वनिवेशस्तदधःस्थितस्थानस्थितानां सव्यक्रमेण स्थापनमुचितं लोकेषु तथा दृश्यते।"

(**मुनीश्वर** और **कृष्णदैवज्ञ** के लिये गणकतरङ्गिणी देखो)

याने ऊँचे दर्जेवाले को पाँती में पहले बैठाना उन से छोटे को

---

१ अथा गुरुकुले वासमिच्छन्तावुपजग्मतुः।
काश्यं सान्दीपनिं नाम ह्यवन्तिपुरवासिनम्॥
(श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध, अध्या. ४४, श्लो. ३१)

उन की बाईं ओर बैठाना यह लोगों के व्यवहार में भी देखा जाता है।

शून्य याने खाली की सूरत **आकाश** के ऐसी **शून्य ०** बनाई गई। क्योंकि संस्कृत में जितने **आकाश**वाची शब्द हैं सब से **शून्य** लिया जाता है। **व्याकरण** में 'शुनः संप्रसारणं वा च दीर्घत्वमिति यत्' इस से शून्य और शुन्य दोनों बनते हैं। **अमरकोश** में लिखा है **'शून्यं तु वशिकं तुच्छरिक्तके'** याने **शून्य खाली** के अर्थ में है इसी लिये **अरबवालों** ने शून्य का तर्जुमा **अरबी** में **सिफ्र** (*Sifr*) या (*Sifra*) किया। यही **सिफ्रा ल्याटिन** में (*Zephiram*) हुआ। फिर 'ज़ेफिरम्' से अँगरेजी में ज़ीरो (*Zero*) या खास **अरबी** से (*Cipher*) हुआ।

बड़ी गिनतिओं के लिये एक एक दहाई की दोनों हाथों की अगुलिओं पर गिनने से दश दहाई का नाम **सैकडा** रक्खा गया क्योंकि ऐसा करने से बोलने में शब्द नहीं बढता। दश दहाई की जगह सौ कहने में एक ही शब्द से काम चल जाता है। इसी तरह वार वार हाथों की दशो **अँगुलिओं** पर गिनती करने से हर एक दहाई के जुदे जुदे, दश, बीस, ··· नाम रक्खे गए।

पाणिनि की शिक्षा से साफ है कि **महादेव** जी ने अक्षरों को बनाया है (त्रिषष्टिर्वा चतुःषष्टिर्वर्णाः शम्भुमते मताः) और **महादेव** जी का बहुत कर के रहना **बनारस** ही में होता है इसी लिये **बनारस** को **कैलासपुरी, विश्वनाथनगरी, आनन्दवन, काशी, महाश्मशान,**··· बोलते हैं। **व्यास** जी भी अपनी बुढौती में **बनारस** ही में आए। **अगस्त्य** जी **बनारस** ही में रहते थे, पीछे से देवताओं के बहुत विनय करने पर बाहर गए। **गणेश** जी **काशी** ही में वास करते हैं। **बनारस** ही को प्रधान समझ कर **गौतम बुद्ध** भी पहले यहीं आए।

संस्कृतविद्या के लिये **बनारस** प्रधानस्थान है। **राम-कृष्णं** के पढाने के लिये **काशी** के पंढे **सान्दीपनि** ऋषि ही को **उग्रसेन, वसुदेव,** ··· सब यदुवंशिओं ने उत्तम समझा। इन सब बातों से जान पड़ता है कि **बनारस** ही के किसी **पंडित** ने सब से पहले इस **अंक-विद्या** का प्रचार किया। फिर यहाँ से **अरब** के लोग इस विद्या को अपने देश ले गए और अच्छी रीति समझ कर **हिंदुस्तान** के आदर के लिये इन अंकों को **हिंदीसा** और इस की रीति को **'हिसाबे हिंद'** कहने लगे।

पीछे से **यूरप** के व्यापारी **अरब** से अपने देश में ले गए और इन अंकों को **अरबिक-नोटेशन** (*Arbic Notation*) (अरब लोगों के अंक चिन्ह) कहने लगे।

लिखने का स्थान।

पहले लोग **जमीन** पर **धूर** फैला कर उस पर **गणित** करते थे। जहाँ कहीं **सूर्य सिद्धान्त,**··· में देखो वहाँ भूमि ही पर हिसाब करना लिखा है। हिसाब को सब पुराने ग्रंथों में **'धूली-कर्म'** लिखा है। **भास्कराचार्य** ने अपने **ग्रहगणित-चन्द्रग्रहणाधिकार** के ४ श्लोक की टीका में **'अत्र धूलीकर्मणा प्रत्यक्षप्रतीतिः'**। **भास्कर** के ग्रंथ में कई जगह **'धूली-कर्म'** आया है। **भास्कर** ने **फलक** के ऊपर भी गणित करना लिखा है इसी से उन्हों ने अपने **गोलाध्याय** के **यन्त्राधिकार** में एक **यन्त्र** का नाम ही **'फलक-यन्त्र'** लिखा है। **फलक** (पटरा या पटरी) पर **धूर** या **अबीर** फैला कर उस पर **गणित** करना यह **हिंदुस्तान** में बहुत पुराने समय से रीति प्रचलित है। **भास्कराचार्य जमीन** पर **सेतखडी** से लिखना इस की भी खबर देते हैं। **परिलेख** में वे लिखते हैं कि **'खटिकया रेखा उच्छाद्य'** याने **सेतखडी** (दुद्धी) से रेखाएँ खींच कर (क्रिया

करो)। इससे साफ है कि **पटरिओं** पर लोग दुद्धी से भी लिखते थे। **बौद्धों** के **कटाह-जातक** के आदि ही में एक **सेठ** के लडके की कहानी में पढने के **स्कूल, फलक,**... की चर्चा आई है। **आल बेरूनी ने** सन् १०३० ई. में **हिंदुस्तान** के **स्कूलों** के वर्णन में लिखा है कि **स्कूलों** में लडकों को **काली पटरी** पर एक **सफेद चीज से** लिखते देखा (*See Al beruni's India by Dr E. C. Sochau, Vol. I, P. 182*)

पटरे पर **बालू, धूर** या **अबीर** फैला कर उस पर हिसाब करना यह रीति मेरे पढने के समय तक **बनारस संस्कृत कालेज** में थी। पीछे से **बापूदेवशास्त्री जी** ने **अँगरेजी स्लेट** चलाई। अब आज कल **काठ** का लटकाऊ **काला पटरा** या **स्लेट** प्रचलित है। बहुत कर के अब **कागज** पर **पेन्सिल** से हिसाब किया जाता है।

अरब के अंक।

पुराने **अरब** के लोग भी **वर्णमाला** के अक्षरों से संख्या दिखलाते थे। उनके यहाँ—

१ = ا (अलिफ)। २ = ب (बे)। ३ = ج (जीम्)।
४ = د (दाल)। ५ = ه (हे)। ६ = و (वाव्)। ७ = ز (ज़े)।
८ = ح (हह)। ९ = ط (त)। १० = ی (जे)। २० = ک (केफ्)।
३० = ل (लाम्)। ४० = م (मीम)। ५० = ن (नून्)।
६० = س (सीन्)। ७० = ع (ऐन)। ८० = ف (फे)।
९० = ص (साद्)। १०० = ق (क़ाफ)। २०० = ر (रे)।
३०० = ش (शीन्)। ४०० = ت (ते)। ५०० = ث (थे)।
६०० = خ (च)। ७०० = ذ (ज़ाल)। ८०० = ض (ज़ाद)।
९०० = ظ (थ)। १००० = غ (गैन)।

उन के यहाँ **हजार** से आगे फिर और संकेत न थे।

इन की संख्याएँ **साबिअन** लोगों से बहुत मिलती हैं खाली **अक्षरों** की सूरतों में भेद है।

सन् ६२२ ई. में जब **महम्मद मक्के** से **मदीने** भाग गए उस समय **सीमाइट** देश के रहनेवालों ने जिन्हें पहले कोई नहीं जानता था, इस इतिहास के नाटक में एक अजब खेल खेलना आरंभ किया। जुदे जुदे जातिवाले सब आपस में मेल कर एक **मजहब** में हो कर **मजहबी** जोश में एक जात के हो गए। वे सब हाथों में **तलवार** लेकर चारो तरफ घूमने लगे, थोड़े ही दिनों में **सीरिआ** और **मेसोपोटमिआ** सब उन के अधीन हो गए। उन के प्रभाव से **पर्शिया** और **हिंदुस्तान** दोनों **स्यारासीन** के राज में मिल गए। उत्तर—**आफ्रिका** और करीब करीब सब **स्पेन** भी इनके वश में हो गए पर पश्चिम **यूरोप** में **चार्लस मार्टल** के प्रभाव से सन् ७३२ ई. में वे लोग आगे बढने से रोके गए।

उस समय **मुसल्मानों** का राज **हिंदुस्तान** से **स्पेन** तक फैल गया था।

अंत में **खलीफा** होने के लिये आपस में बड़ा भारी झगडा खडा हुआ।

सन् ७५५ ई. में मुसल्मानों के राज का दो हिस्सा हो गया। एक **बगदाद** में **खलीफा** हो कर बैठा और दूसरा **कार्डोवा** में जो कि **स्पेन** में है।

इस तरह **अरबवालों** का फैलना बडे **अचरज** की बात है, इस से भी बढ कर **अचरज** यह है कि उन लोगों ने किस आसानी से अपनी घूमनेवाली **जंगली** चाल को छोड कर भली चाल को पकडा और बड़े बड़े पढ़े लिखे लोगों पर अपना राज जमाया। उन लोगों ने सब जीते हुए अपने देशों में **अरबी** भाषा का अच्छी तरह से प्रचार किया।

अयासिडेस के राज में पूरब की ओर **विद्या-इतिहास** का एक नया समय आरंभ हुआ।

बगदाद यूफ्राटस नदी के किनारे बसा है, यह **हिंदुस्तान** और **ग्रीस** के बीच में है; इस के पूरब की ओर **हिंदुस्तान** और पश्चिम **ग्रीस** है। इस लिये **अरब** के लोग **ग्रीक** और **हिंदू** दोनों से नई नई बातें सीखने लगे।

अरबवालों के भाग्य में था कि **ग्रीस** और **हिंदुस्तान** के **राजा** हों, उपद्रव के समय में वहाँ की विद्याओं को **लोप** होने से बचावें और फिर पीछे से उन विद्याओं को **यूरपवालों** को सपुर्द कर दें।

अरबवालों ने **गणित**विद्या में बहुत कम तरक्की की, जो बातें **ग्रीस** और **हिंदुस्तान** से सीख चुके थे उनपर से शायद एकाध **नई बातों** का पता लगाए हों। उन लोगों का मन विद्या की नई बातों पर नहीं लगता था; उन लोगों को सोचने की **शक्ति** कम थी, पर वे लोग व्यापार में बहुत होशयार थे। जिन जिन विद्या की बातों के विचार पर **ग्रीक** और **हिंदू** प्रसन्न हो जाते थे उनपर इन लोगों ने कुछ भी विचार न किए। **ग्रीक** के **शंकुच्छिन्न** (*Conic Sections*) और **हिंदुस्तानिओं** के **कुट्टक** और **वर्गप्रकृति** पर इन लोगों का मन गया ही नहीं।

सन् १५६ हिजरी (स. ७७३ ई.) में दूसरे **अब्बासिसदी खलीफा अल्मन्सूर** के राज में **हिंदुस्तान** का एक ज्यौतिषी **बगदाद** में गया और कहने लगा कि एक **हिंदू राजकुअँर** के कहने से यह ग्रहों की एक **सारणी** बनाई गई है। **अरब** के पंडितों ने उस **राजकुअँर** का नाम **फिघर** (*Phighar*) लिखा है।

जिस **व्याघ्रमुख** राजा के यहाँ **ब्रह्मगुप्त** रहते थे उसी के

वंश का कोई **फिघर** (व्याघ्र) रहा होगा, इसमें कुछ भी संशय नहीं, और जो **ज्यौतिषी बगदाद** में गया होगा वह **ब्रह्मगुप्त** के विद्यार्थिओं में से कोई रहा होगा। **बलख** के **ज्यौतिषी अबु-माशर** की **पोथी** से साफ है कि **ब्रह्मगुप्त** के ग्रंथ में जोजो ग्रहों के चलने की गिनती है वही उस **सारणी** में भी है।

खलीफा अल्मन्सूर के कहने से **महम्मद बिन इब्राहिम अल्फज़ारी ने** उस का अनुवाद **अरबी** में किया और उस का नाम **सिंद-हिंद** या **हिंद-सिंद** रक्खा।

उसी समय से याने स. ७७३ ई. से **अरब** में अच्छी तरह से हिंदुओं के **अंक** और संख्या लिखने की रीति फैली।

पच्छिमी **अरब** में इन अंकों को **गुबार अंक** (*Gubar Numerals*) कहते हैं। **अरबी** में **गुबार धूर** को कहते हैं। पहले लिख आए हैं कि **हिंदुओं** में पहले **जमीन** पर **धूर** फैला कर उस पर हिसाब करने की चाल थी। इस लिये जब **हिंदुस्तान** में **अरब** के लोगों ने धूर पर **अंकों** को देखा तो **'धूर पर के अंक'** यह नाम ही रख दिया।

क्यांटर (*Cantor*) और **खांकेल** (*Hankel*) ने पुराने संस्कृत की २५७८ संख्या पर से आज कल की **अँगरेजी** *2578* संख्या को इस तरह से दिखलाया है।

पुरानी **संस्कृत** में	८ ⊔ ≻ ꓘ
कुछ विगाड कर लिखने से	८ ५ ^ 8
पूरबी **अरब** में	۲ ۵ V ∧
पच्छिमी **अरब गुबार अंक**	८ ५ 7 ୨
ग्यारहवीं सदी में	၆ ω V ∧
तेरहवीं सदी में	7 ५ ∧ 8
सोरहवीं सदी में	2 5 7 8

ब्रह्माक्षरों को देखो तो साफ साफ मालूम हो जायगा कि उन्हीं के द्वि, पञ्च, सप्त और अष्ट के पहले अक्षरों की बिगड़ी सूरत ही पुराने संस्कृत के २५७८ हैं।

ज़रमेन में सन् १५०० ई. तक **रोमन ही** के अंक जो कि **घड़ी में** हैं चलते थे, पर सन् १४८२ ई. ही से **हिंदुओं** की संख्या लिखने की रीति भी जारी हो गई थी।

ईशामसीह की **सोरहवीं सदी** से सारे शिक्षित देशों में **हिंदुओं** की संख्या लिखने की रीति अच्छी तरह से फैल गई।

संस्कृत में स्थानों के नाम।

यजुर्वेदसंहिता के १७वें अध्याय का दूसरा मंत्र—

"दश च दश च शतं च शतं च सहस्रं च सहस्रं चायुतं चायुतं नियुतं च नियुतं च प्रयुतं चार्बुदं च न्यर्बुदं च समुद्रश्च मध्यं चान्तश्च परार्धश्चैता मे अग्न इष्टका धेनवः सन्त्वमुत्रामुष्मिन् लोके।"

इस में दश, शत, सहस्र, अयुत, नियुत, प्रयुत, अर्बुद, न्यर्बुद, समुद्र, मध्य, अंत, परार्ध, इतने स्थानों के नाम आते हैं।

इस के **भाष्य वेददीप** में **महीधर** लिखते हैं—

"शतं दशगुणितं सहस्रं भवति सहस्रं दशगुणितमयुतं भवति अयुतं दशगुणितं नियुतं भवति नियुतं लक्षम् नियुतं दशगुणितं प्रयुतं भवति प्रयुतं लक्षदशकं प्रयुतग्रहणं कोटेरुपलक्षकम् प्रयुतं दशगुणं कोटिः कोटिर्दशगुणा अर्बुदम् अर्बुदं दशगुणं न्यर्बुदम् न्यर्बुदशब्देनाब्जसंख्या ज्ञेया एतेषां ग्रहणमब्जसमुद्रान्तर्वर्त्तिनीनां खर्वनिखर्वमहापद्मशङ्कुसंज्ञानां संख्यानामुपलक्षकम्।"

इस में कोटि, खर्व, निखर्व, महापद्म, शङ्कु, इतने अधिक हैं। महीधर भास्कर से पीछे हुए हैं इसलिये उन की **लीलावती** से निकाल कर इतने अधिक लिख दिए हैं।

अथर्व संहिता के पाँचवें **कांड** के ४ **अनुवाक** के १५-१६

सूत्रों में १–११, और २०, ३०, ४०, ५०, ६०, ७०, ८०, ९०, १००, १००० संख्याओं के शब्द आते हैं।

इसी तरह **ऋग्वेद** में भी १०, १००, १०००,… के शब्द आते हैं।

वाल्मीकिरामायण–किष्किंधाकांड के ३८ सर्ग ३०–३१ श्लो.

[1]"शतैः शतसहस्रैश्च वर्त्तन्ते कोटिभिस्तथा।
अयुतैश्चावृता वीर शङ्कुभिश्च परंतप॥
अर्बुदैरर्बुदशतैर्मध्यैश्चान्त्यैश्च वानराः।
समुद्राश्च परार्धाश्च हरयो हरियूथपाः॥

३९वें सर्ग का २९ श्लो.

"ततः पद्मसहस्रेण वृतः शङ्खशतेन च।
युवराजोऽङ्गदः प्राप्तः पितुस्तुल्यपराक्रमः॥"

और ४८वें सर्ग का १२ श्लो.

"महर्षिः परमामर्षी नियमैर्दुःप्रधर्षणः।
तस्य तस्मिन् वने पुत्रो वालको दशवार्षिकः॥"

---

१ बनारस संस्कृत कालेज के पुस्तकालय में तेरियट (बजरबट्टू) के पत्ते पर बंग-अक्षर में लिखी पोथी जो अनुमान से ४०० वर्ष से अधिक पुरानी है उस में ऐसा पाठ है।

शतैः शतसहस्रैश्च कोटिभिश्चायुतैरपि।
प्रयुतैश्चागमिष्यन्ति शङ्कुभिश्च परन्तप॥
अर्बुदैरर्बुदशतैर्मध्यदेवाश्च वानराः।
सामुद्राश्चापरार्द्धैश्च हरयः सह यूथपैः॥
ततः पद्मसहस्रेण वृतः शङ्कुशतेन च।
युवराजोऽङ्गदः प्राप्तः पित्रा तुल्यपराक्रमः॥
महर्षिः परमामर्षी नियमे दुष्प्रधर्षणः।
तस्य तस्मिन् वने पुत्रो वानरो दशवार्षिकः॥

इस में शङ्ख के स्थान में 'शङ्कु' पाठ है। मुझे भी यह पाठ ठीक मालूम होता है। बौद्धों के समय से 'शङ्ख' यह नाम मिलाया गया है।

इन श्लोकों से **वाल्मीकि** ने दश, शत, सहस्र, अयुत, कोटि, शङ्कु, अर्बुद, मध्य, अंत्य, समुद्र, परार्ध, पद्म, शंख, इतने स्थान कहे हैं।

शक ४२० (स. ४९८ ई.) में **आर्यभट ने आर्यभटीय के गणितपाद** में—

"एकं दश च शतं च सहस्रमयुतनियुते तथा प्रयुतम्।
कोट्यर्बुदं च वृन्दं स्थानात् स्थानं दशगुणं स्यात्॥"

इस में एक, दश, शत, सहस्र, अयुत, नियुत, प्रयुत, कोटि, अर्बुद, इतने स्थान के नाम आते हैं। इस श्लोक में बहुत लोगों का मत है कि 'कोट्यर्बुदं च **वृन्दं**' यह अशुद्ध पाठ है '**वृन्दं**' यहाँ पर व्यर्थ होता है इस लिये शुद्ध पाठ '**कोट्यर्बुदमरविन्दं**' यह है। बहुतों का मत है कि 'वृन्द' यह यहाँ पर **कमल**–(अरविन्द = पद्म) वाची है। जो हो पर दोनों मत से एक स्थान और पद्म आता है पर मेरी समझ में '**वृन्द**' से और बहुत स्थान हैं यह **आर्यभट** ने जनाया है क्योंकि 'खद्विनवके खरा नव' इस में द्विनवके से अठारह स्थान लिया है जो कि आज तक संस्कृत के अंकगणित में प्रसिद्ध हैं।

इस **आर्या** के प्रथमचरण के अंत का 'च' **छंदोग्रंथ** की रीति से दीर्घ गिना जायगा। इस बात को न जान कर **डा. कर्न** ने इस में व्यर्थ छंदोभंग दोष दिखलाया है। (*See His edition of Aryabhatiya, 1874*) **आर्यभट** ने नियुत से लक्ष लिया है। **अमरकोश** में भी लिखा है कि 'वा लक्षा नियुतं च तत्।'

रत्नकोश में भी **आर्यभट** ही के स्थान लिखे हैं—

"शतं सहस्रमयुतं नियुतं प्रयुतं तथा।
स्त्री कोटिरर्बुदमिति क्रमाद्दशगुणोत्तरम्॥"

दुर्गा (सप्तशती) के दूसरे अध्याय के ४१ वें श्लोक की

टीका में **नागेश** ने **ब्रह्माण्डपुराण** का वचन लिखा है—

"एकं दश शतं चैव सहस्रमयुतं तथा।
लक्षं च प्रयुतं चैव कोटिरर्बुदमेव च॥
अब्जं खर्वो निखर्वश्च शंखपद्मौ च सागरः।
अन्त्यं मध्यं परार्धं च दशवृद्ध्या यथाक्रमम्॥"

इस में **शङ्कु** छूट गया है उस के स्थान में **शङ्ख** आया है और अंत के **पद्म** से **महापद्म** लिया है ऐसा जान पड़ता है।

श्रीधर ने त्रिशतिका में—

एकं दश शतमस्मात् सहस्रमयुतं ततः परं लक्षम्।
प्रयुतं कोटिमथार्बुदमब्जं खर्वं निखर्वं च॥
तस्मान्महासरोजं शङ्कुं सरितां पतिं ततस्त्वन्त्यम्।
मध्यं परार्धमाहुर्यथोत्तरं दशगुणाः संज्ञाः॥

इस मे एक, दश, शत, सहस्र, अयुत, लक्ष, प्रयुत, कोटि, अर्बुद, अब्ज (कमल), खर्व, निखर्व, महासरोज (महापद्म), शङ्कु, सरितां पति (समुद्र), अन्त्य, मध्य, परार्ध, इतने स्थान हैं, इन्हीं को **भास्कराचार्य** ने भी अपनी **लीलावती** में पढा है।

लल्ल, ब्रह्मगुप्त, बटेश्वर, भट्ट बलभद्र, श्रीपति,··· के **अंकगणित** नहीं मिलते पर परंपरा से निश्चय होता है कि उन मे भी क्रम से स्थानों के नाम **श्रीधर** ही के लिखे होंगे।

सब से अंत का और सब से बडा स्थान 'परार्ध' है इस में संशय नहीं। **श्रीहर्ष ने** भी **नैषध के** २ सर्ग, ४० श्लो.

"यदि त्रिलोकी गणनापरा स्यात् तस्याः समाप्तिर्यदि नायुषः स्यात्।
पारे परार्धं गणितं यदि स्यात् गणेयनिःशेषगुणोऽपि स स्यात्॥"

इस में **परार्ध** ही को सब से बडा माना है।

संस्कृत के ग्रंथो में **नवनिधिओं** के नाम—

"महापद्मश्च पद्मश्च शंखो मकरकच्छपौ।
मुकुन्दकुन्दनीलाश्च खर्वश्च निधयो नव॥" (अमरकोश, स्वर्ग वर्ग)

इस में पद्म, शंख, नील और खर्व आते हैं।

मुझे **संस्कृत** के प्रचलित ग्रंथों में स्थानों के नामों में **'नील'** नहीं मिला है। संभव है कि किसी **बौद्धग्रंथ** में **कुबेर की** निधि समझ कर किसी ने एक स्थान का नाम **'नील'** भी रख लिया हो।

बौद्धों के समय से हजार के बाद बहुत नए नाम न आवें और एक स्थान भी बढ जाय इस लिये हर एक नामों के साथ दश जोड दिए गए, अयुत, प्रयुत, समुद्र, मध्य, अंत और परार्ध छोड दिए गए, नियुत की जगह छोटा नाम लक्ष ले लिया गया और नील, अर्व और शंख तीन नाम नए मिलाए गए।

आज कल **बनारस** के आस पास —

एकाई, दहाई, सैकडा, हजार, दशहजार, लाख, दशलाख, करोड, दशकरोड, अर्व, दशअर्व, खर्व, दशखर्व, नील, दशनील, पद्म, दशपद्म, शंख, दशशंख, इतने स्थानों के नाम प्रचलित हैं।

कहीं कहीं दशहजार,··· दश के स्थान में **'दह'** बोलते हैं। ये सब **प्राकृत** से होते हुए **हिंदी** में आए हैं। सब **संस्कृत** शब्दों के अपभ्रंश हैं। जैसे दश से दह फिर दहाई, शत से सौ फिर सैकडा, सहस्र से सहस्सर फिर पहला अक्षर निकल जाने से हस्सर और हस्सर से हज्जार और हजार हुआ। इसी तरह और भी सब संस्कृत के अपभ्रंश हैं।

यूरप में सब से पहले **मिलिअन** (*Million*) शब्द स. १४९४ ई. में **पासिओली** (*Pacioli*) ने (*Samma de Arithmetica*) में दिखलाया है।

इटली में दश टन सोने को **मिलिअन** कहते हैं उसी से संख्या के स्थान में भी इस का प्रचार हो गया। अचरज है कि क्यों आगे **बिलिअन** (*Billion*), **ट्रिलिअन** (*Tryllion*) **काड्रिलिअन** (*Quadrillion*), **क्विलिअन** (*Quyllion*) **सिक्सलिअन** (*Sixllion*), **सेप्टलिअन** (*Septyllion*) **आट्टिलिअन** (*Ottyllion*) और **नानिलिअन** (*Nonyllion*), इतने स्थान बनाए गए, क्योंकि **यूरप** के लोगों में तो **आकाशकक्षा** या **ब्रह्मायु-दिन** के ऐसी कोई भारी संख्या भी नहीं है। संभव है कि **संस्कृत**-स्थानों को देख कर किसी ने अपने यहाँ भी दूर तक स्थानों को फैलाया।

सन् १५८० में **लियोन्स के जीन ट्रेन्चन्ट** (*Jean Trenchant of Lyons*) ने १००० **मिलिअन** के लिये **मिलिअर** (*Miliars*) का प्रचार किया।

मिलिअन,...... चक्वेट (*Chuquet*) में स. १४८४ ई. से प्रचलित हो गए थे।

ग्रहगणित में सब से बडी संख्या **आकाश-कक्षा** है। **ब्रह्मगुप्त** ने इस का मान अपने **गोलाध्याय** में "अम्बरयोजनपरिधिः शशिभगणाः शून्यखखजिनाग्निगुणाः।" लिखा है। इस से **खकक्षायोजन** = १८७१२०६९२०००००००० । **ब्रह्मगुप्त** ने भी परंपरा से पुराने लोगों के ग्रंथों से लिया होगा (संभव है कि **विष्णुधर्मोत्तरपुराण** से लिया हो)। **पुलिश** के मत से **खकक्षायोजन** = १८८६१७७७५१०९१२००० इतना है (मेरी छपवाई भट्टोत्पलटीकासहित बृहत्संहिता का ९० पृ. देखो)।

आकाशकक्षायोजन से भी बड़ी संख्या **ब्रह्मा की** पूरी आयु में **सौर-दिन**

=युव × १००० × २ × ३६० × ३६० × १००

=१११९७४४००००००००००० है

आकाशकक्षा में **मध्य** तक और **ब्रह्मायु** में सौर दिन के मान में **परार्ध** स्थान तक अंक आते हैं इस लिये **१८ स्थान** और उनके नाम संस्कृत में बनाए गए ऐसा जान पडता

है। पीछे से लोगों ने एक स्थान और बढा कर १९ स्थान किए।

दश या दहाई।

संस्कृत में धन का **देवता कुबेर** माने गए हैं। **कुबेर** का स्थान **कैलास** (के जले लसति शोभते इति कैलासः) याने पानी में है। यह पहले **लंका** में भी रहते थे; अपने छोटे भाई **रावण** के डर से **लंका** से भाग गए।

पानी में रहने के कारण सब पानी के पदार्थों के मालिक हुए। इन की **नवनिधि** महापद्म (बडा कमल), पद्म (कमल) शंख (प्रसिद्ध समुद्र का एक जानवर), मकर (प्रसिद्ध पानी का एक जानवर, मगर), कच्छप (प्रसिद्ध पानी का एक जानवर, कछुआ), मुकुंद (एक फूल), कुंद (माघ महीने का एक फूल), नील (नीला कमल), खर्व (छोटा कमल), ये सब **पानी ही** के पदार्थ हैं।

जौं विचार कर देखो तो **व्यापार** का मूल **धन ही** है इस लिये व्यवहार चलाने के लिये लोगों ने **कुबेर** को **धन-पति** समझ कर उन की नवनिधिओं ही में से पानी के एक एक पदार्थ को लेकर **अंकों** के स्थानों में रख दिए।

पानी की एक खुशबूदार **घास** जिसे आज कल लोग **पानी का मोथा** या **नागर मोथा** कहते हैं उसी घास की जड को, जो **कसेरू** ऐसी होती है, जिस स्थान में रख दिया उस का नाम उस घास के छोटे नाम **'दशपूर'** के **'दश'** से प्रसिद्ध हुआ। (दशपूरं दशपुरं प्लवनं जीविताह्वयम्-इति वाचस्पतिः)।

लोग बडा नाम न लेकर इस को 'दश' पुकारने लगे जो कि आज कल **हिंदी** में **'दहाई'** नाम से मशहूर है।

जौं इस **घास** की जड की सूरत • ऐसी मानो तो • = १०, •• = २०, ••• = ३०,......। या **दंशि** (दंशने) धातु से **दशन्ति**-इति दश (जो काटें वह दश) इस अर्थ से **दोनों पंजों**

की अँगुलिओं को मिला कर दहाई की जगह ∩ ऐसी सूरत बनाते रहे हों जैसा कि **एजिप्ट** के लोग दश की जगह रखते थे।

शत या सैकड़ा।

इस स्थान की जगह पहले लोग **बाँस** के टुकडे को रखते थे फिर जब इस **बाँस** का नाम संस्कृत में **शतपर्वा** (शतपर्वा यवफलो बेणुमस्करतेजनाः **अम. को.** २ कां. ४ व १६१ श्लो.) पडा तब इस का छोटा नाम **'शत'** ले लिया गया। मान लो कि एक टुकडे की सूरत Ɨ ऐसी है तो

Ɨ = १००, ƗƗ = २००,... ƗƗƗƗƗƗƗƗƗ = ९०० ऐसा होगा।

सहस्र या हजार।

जान पडता है कि इस स्थान में पहले लोग **दूब** (दूर्वा) को रख देते थे फिर पीछे जब संस्कृत में **दूब** का नाम **सहस्रवीर्या** (सहस्रवीर्याभार्गव्यौ अ. को. २ कां., ४ व, १५८ श्लो.) पडा तब लोग इस स्थान को **'सहस्र'** कहने लगे। मान लीजिए इस की सूरत ⺦ ऐसी है तो

⺦ = १०००, ⺦⺦ = २०००,...... ऐसा होगा।

अयुत, लक्ष (नियुत) और प्रयुत।

संस्कृत में **लाक्षा** या **लक्षा लाह** को, जो लाही से पैदा होता है, कहते हैं। **भानुदीक्षित अमरकोश** की टीका में लिखते हैं कि लक्ष्यते इति **लक्षा, लक्ष** (आलोचने) धातु से घञ् प्रत्यय कर फिर पृषोदरादित्वात् से **लाक्षा** बना। **लक्ष** 'निशाना' के अर्थ में भी है। इन सभों से जान पडता है कि **लक्ष लाह** और दूसरे **रंग** के मेल से एक तरह की **गरेली** है जिसे यु (मिश्रणे) धातु से क्त प्रत्यय कर और नि प्रत्यय लगा कर **नियुत** (कई रंग का मेल) भी कह सकते हो।

यह **गोली** जब एक ही **रंग** की हो याने **बेमेल** हो तो उसे **'अयुत'** और **नियुत** से भी ज्यादे रंग के **मेल** की हो तो उसे **प्रयुत** कह सकते हैं।

इस लिये बेमेल याने खाली **लाल रंग** की **गोली** 'अयुत' दो रंग के मेल की **गोली 'नियुत'** और तीन चार रंग के मेल की **गोली 'प्रयुत'** नाम से मशहूर हुई। या **एक रंग, दो रंग** और **तीन चार रंग की कौड़िआँ** उन नामों से मशहूर हुई हों। अयुत-गोली को ला$_1$, लक्ष-गोली को ला$_2$ और प्रयुत-गोली को ला$_3$ कहो तो

ला$_1$ = १००००, ला$_1$ला$_1$ = २००००,……

ला$_2$ = १०००००, ला$_2$ला$_2$ = २०००००,……

ला$_3$ = १००००००, ला$_3$ला$_3$ = २००००००,… ऐसा होगा।

दक्षिण देशों में अब तक गणित करने में अंकों के स्थानों में कहीं कहीं **कौडिआँ** प्रचलित हैं। वे लोग कई एक जुदी जुदी सूरत की **कौडिओं** को जुदे जुदे स्थानों में रख लेते हैं। इस से अनुमान होता है कि पुराने लोगों ने **अयुत, लक्ष, (नियुत)** और **प्रयुत** स्थानों में **समुद्र** की बहुत दिन तक ठहरनेवाली चीज समझ कर जुदे जुदे रंग की **कौडिओं** को रख लिए थे।

अब भी **जुआरी** लोग जुदी जुदी सूरत की अपनी अपनी **कौडी** रख कर **जुआ** खेला करते हैं।

कोटि या करोड।

समुद्र के पास एक **ब्राह्मी लता** या **घास** होती है। इस का संस्कृत नाम **कोटिवर्षा** है। इस के **रस** में **मधु (शहद)** ऐसा स्वाद होता है इसी लिये **भानुदीक्षित** ने अपनी **अमरकोश** की टीका में इस की व्युत्पत्ति की है 'कोटिभिरग्रैर्वर्षति

मधु या सा कोटिवर्षा' याने अपने किनारों से जो **शहद** बरसावे वही **'कोटिवर्षा'** है। यह **लंका** में बहुत बोई जाती है इसी लिये इस का दूसरा नाम **'लंकोपिका'** (लंका में जो बोई जाय) है।

पुराने लोगों ने जिस स्थान में इस की **जड** को रख लिया उसे इस के छोटे नाम **'कोटि'** से पुकारने लगे। इस के जड की सूरत मान लो कि o ऐसी है तो $o = १०^७$, $oo = २ \times १०^७$,… ऐसा होगा।

अर्बुद।

अर्बुद माँस के **कील** को कहते हैं। **मेदिनीकोश** में लिखा है—

"**अर्बुदो** मांसकीलेऽस्त्री परुषे दशकोटिषु। महीधरविशेषे ना …।"

मांस-कील से किसी **समुद्र** के जानवर की **हड्डी** जान पडती है। जैसे **गोमतीचक्र, सीपी, मूँगा, … समुद्र** के जानवरों की **हड्डी** पवित्र समझी जाती है उसी तरह यह भी किसी जानवर की **हड्डी** पवित्र समझी गई होगी। यह जिस स्थान पर रक्खी गई वह **अर्बुद** नाम से मशहूर हुआ। इस की सूरत जौं □ ऐसी हो तो

□ = $१०^८$, □□ = २×१०^८,… ऐसा होगा।

अब्ज (पद्म, कमल), खर्व (छोटा कमल), निखर्व (कुछ बडा कमल) और महापद्म (सब से बडा कमल)।

पद्म से साधारण **कमल** याने **कमल** का **बीज** लिया गया है। इस के आगे तीसरा नाम **'महापद्म'** बडा भारी **कमल** याने बडे भारी **कमल** का **बीज** है, इस लिये **कमल** और **महाकमल** के बीच के **खर्व** और **निखर्व** से **खर्व-कमल** (छोटा कमल) और **निखर्व-कमल** (कुछ बडा कमल) लिया गया है।

जल्दी से बोलने के लिये आधे नाम **खर्व** और **निखर्व** ले

लिए गए हैं ।

कमल की बहुत जाति हैं । इन की **बीए से माला** बनती है । इस **बीए की माला** को **कमलाक्ष** कहते हैं । संस्कृत में **खर्व** छोटे को कहते हैं ।

अमरकोश में लिखा है कि '**खर्वो** ह्रस्वश्च वामनः' । जैसे '**युत**' में 'नि'–उपसर्ग से **नियुत** बना है उसी तरह **खर्व** में नि–उपसर्ग लगाने से **निखर्व** बना है । **धातुओं** में उपसर्ग लगाने से धातुओं का अर्थ बदल जाता है, इसी लिये **दीक्षित** ने **सिद्धान्तकौमुदी** में लिखा है—

"उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते ।
प्रहाराहारसंहारविहारपरिहारवत् ॥"

इन सब बातों से साफ साफ मालूम होता है कि **पद्म, खर्व, निखर्व** और **महापद्म** इन से चार तरह के **कमलों** के चार तरह के **बीज** लिए गए हैं ।

ये **बीज** जिन स्थानों में रक्खे गए उन के नाम भी इन्हीं नामों से मशहूर हुए ।

इन बीजों को जौं $प_१, प_२, प_३, प_४$ कहो तो

$$प_१ = १०^{९},\quad प_१प_१ = २ \times १०^{९}, \ldots$$
$$प_२ = १०^{१०},\quad प_२प_२ = २ \times १०^{१०}, \ldots$$
$$प_३ = १०^{११},\quad प_३प_३ = २ \times १०^{११}, \ldots$$
$$प_४ = १०^{१२},\quad प_४प_४ = २ \times १०^{१२}, \ldots$$

ऐसा होगा ।

शंकु ।

शंकु पानी का एक **जानवर** है । **अमरकोश** में लिखा है—

"तिमिंगिलादयश्चाथ यादांसि जलजन्तवः ।
तद्भेदाः शिशुमारोद्रशङ्कवो मकरादयः ॥"

इस की **हड्डी** जिस स्थान में रखते थे उस स्थान को लोग **शंकु** कहने लगे । इस **हड्डी** की सूरत मानो कि ⟪ ऐसी है तो

⟪ = $१०^{१३}$, ⟪⟪ = $२ \times १०^{१३}, \ldots$

जलधि (समुद्र) अंत्य, मध्य और परार्ध ।

समुद्र में सभी रत्न रहते हैं; इस का नाम ही **रत्नाकर** है, इस लिये **शंकु** के दशगुने को लोगों ने **समुद्र** याने **सागर,** इस से दशगुने को **अंत्य** याने **सागर का अंत्य (महासागर का आदि),** इस के दशगुने को **मध्य** (**महासागर का मध्य**) और इस के दशगुने को **परार्ध** (**महासागर का मध्य के बाद दूसरा हिस्सा**) कहा ।

समुद्र की सूरत ▭, अंत्य की सूरत ▭-, मध्य की सूरत ▭-⊏, और परार्ध की सूरत ▭-▭ ऐसी मानें तो

▭ = $१०^{१४}$, ▭▭ (एक के ऊपर एक) $२ \times १०^{१४}, \ldots$
▭- = $१०^{१५}$, ▭-▭- (एक के ऊपर एक) = $२ \times १०^{१५}, \ldots$
▭-⊏ = $१०^{१६}$, ▭-⊏▭-⊏ (एक के ऊपर एक) = $२ \times १०^{१६}, \ldots$
▭-▭ = $१०^{१७}$, ▭-▭▭-▭ (एक के ऊपर एक) = $२ \times १०^{१७}, \ldots$

ऐसा होगा ।

इस तरह **नामों** के ऊपर ध्यान देने से साफ साफ मालूम देता है कि **दश, शत,** ··· स्थानों को समझने के लिये पुराने **हिंदुओं** ने जुदे जुदे **पानी के पदार्थों** को रख लिया (जैसा कि **एजिप्ट** के लोग **पानी** के रहनेवाले **हंसों** के मुँहों को रक्खा । दोनों में भेद इतना है कि **हिंदुओं** ने खास उन चीजों के टुकडे, **हड्डी, जड** और **बीए** ले लिए और **एजिप्ट** के लोगों ने खास चीज को न लेकर उन की सूरत बना ली) । फिर पीछे से संख्या की लिखने की रीति जारी होने पर उन्हीं पदार्थों के नाम से वे **स्थान** बोले जाने लगे । संभव है कि **शतरंज**

के **मोहरे** ऐसे **कमल** वगैरह की **काठ** की सूरत बना ली गई हो जिन्हें **हिंदी** में **गोटी** भी कहते हैं ।

वे लोग **समुद्र** वगैरह की जगह क्या रखते थे इस का पता लगाना अब **असंभव** है क्योंकि **जमीन** पर **कमलगट्टा, गोली, कौडी, बाँस के टुकडे, हड्डी** ··· से जो हिसाब किए जाते थे वे थोडे समय तक **जमीन** पर रह सकते हैं । **एजिप्ट** के ऐसा अगर **पत्थर** पर उन की सूरत खोदी गई होती तो संभव था कि आज चार पाँच हजार वर्ष बीतने पर भी वे मौजूद रहते जैसा कि **एजिप्ट** में अब तक बहुत स्थानों पर खोदे हुए **अंक** मौजूद हैं ।

अर्ब (अरब)।

बौद्धों के समय से संख्या के एक स्थान का नाम **अर्ब** भी आया है । बहुत लोगों ने **अर्बुद** का अपभ्रंश **अर्ब** मानां है, पर मेरी समझ में उन लोगों ने **अर्ब** से **दरयाई घोडा** लिया है । संस्कृत में **'अर्वा' घोडे** को कहते हैं । **अमरकोश** में लिखा है 'बाजिवाहार्वगन्धर्वहयसैन्धवसप्तयः ।' (ऋगतौ धातु से वनिप् प्रत्यय करने से **अर्वन्** बनता है)।

शंख और नील ।

शंख समुद्र का प्रसिद्ध एक जानवर है, इस की सूखी **हड्डी** भी **शंख** ही के नाम से प्रसिद्ध है, **हिंदुओं** में यह बहुत पवित्र समझी जाती है, लोग **भगवान** की **पूजा** में इस को बजाते हैं ।

नील से **नीलकमल** का बीज लिया गया है । स्थानों के नामों में, **हीरा, पन्ना, पोखराज,**··· **रत्नों** के नाम नहीं आए हैं इस लिये **नील** से जान पडता है कि, **'नीलम'** नहीं लिया गया है ।

अंकों का जोडना और घटाना ।

जिस रीति से कई एक संख्याओं को **एकट्ठा** करते हैं याने **जोडते** हैं उस का संस्कृत में प्रधान नाम **संकलित** या **संकलन** है पर कहीं कहीं **योग** और **युक्ति** भी नाम आते हैं । **संकलन** या **संकलित कल** (शब्दसंख्यानयोः) धातु से बना है जिस का सं उपसर्ग लगाने से अच्छी तरह **गिनती** करना याने संख्याओं को **एकट्ठा** करना है ।

जब संख्याओं के **स्थान** बन गए तो एक एक **स्थान** के **अंकों** को **एकट्ठा** कर लेना और उन में से बडे स्थान के अंकों को अलग कर उन्हें बडे स्थानवाले अंकों में मिलाते जाना और अंत में **जोड** जान लेना यह काम कुछ कठिन नहीं है, पर व्यवहार में इस काम को लोग कैसे करते थे यह बात किसी **संस्कृत-गणित** की पोथिओं में नहीं है । जहाँ कहीं जोडने या घटाने की रीति लिखी है वहाँ पर इतना ही लिखा है कि **क्रम** से याने एकाई, दहाई, ··· या **उत्क्रम** से याने पहले सब से **बडे स्थान** के अंकों को फिर उस से उतरे हुए याने **छोटे स्थान** के अंकों को **योग** में मिलाते और **घटाने** में घटाते जाओ ।

दूसरे आर्यभट ने अपने महासिद्धान्त में—

"संख्यावतां बहूनामेकीकरणं तदेव संकलितम् ।
यदपास्तं सर्वधनात् तद्व्यवकलितं तु शेषकं शेषम् ॥"

भास्कराचार्य ने भी अपनी **लीलावती** में लिखा है—

"कार्यः क्रमादुत्क्रमतोऽथवाङ्कयोगो यथास्थानकमन्तरं वा ।"

पर इतना कहने से किसी के मन में यह बात नहीं आस-कती कि क्रिया कैसे करना । इसी लिये **गणित, वैद्यक, संगीत** और **शास्त्र** चलाने और बनाने की **विद्या** में लोग कहा करते हैं कि इन संकेतविद्याओं में **कीली** रहती है उस का भेद **गुरु** के

विना नहीँ खुलता ।

हम लोग गुरु-परंपरा से इस क्रिया को जैसे करते हैँ उस का एक **उदाहरण** दिखाते हैँ ।

मान लो कि ३२५, १७८५, ९५२, २५ को जोडना है तो **जमीन** या **पटरे** पर धूर फैला कर एक एक स्थानोँ के नीचे अंकोँ को लिखने से—

३२५
१७८५
९५२
२५ } ऐसा हुआ । अब क्रमरीति से पहले एकाई के अंकोँ को जोड कर १७ के ७ को ऊपर की पाँती के **पाँच** को **मिटाकर** उस की जगह ७ लिखते हैँ और **हाथ आए एक** ऐसा बोलते हैँ । फिर इस एक को **दहाई** के अंको के साथ जोडते हैँ । यहाँ पर यह जोड १८ होते हैँ । ऊपर की पाँती की **दहाई दो मार** कर याने **मिटा कर** दहाई के जोड १८ के **आठ** को लिखते हैँ और **हाथ आए एक** कहते हैँ । फिर इस **एक** को सैकडेवाले अंकोँ के साथ जोडते हैँ । यहाँ पर यह जोड २० होता है । ऊपर की पाँती के सैकडेवाले अंक **तीन को मार कर** उस की जगह सैकडे के योग २० के **शून्य** को लिखते हैँ और **हाथ आए दो** ऐसा बोलते हैँ । इस **हाथ आए दो** को फिर **हजार-स्थान**वाले **अंकोँ** के साथ जोडते हैँ । यहाँ पर यह जोड **तीन** होता है इसे ऊपर की पाँतीवाले अंकोँ के साथ हजार के स्थान पर लिख देने से योग = ३०८७ हुआ ।

इसी रीति से सदा **योग** के अंकोँ को ऊपर की पाँती मेँ लिखते हैँ ।

उत्क्रमरीति मेँ पहले सब से बडे स्थान के **अंकोँ** को जोड कर ऊपर की पाँती मेँ पहले अंक को मार कर उस की जगह लिखते हैँ । जैसे यहाँ ऊपर की पाँती मेँ पहले हजार का **एक रक्खा** जायगा, फिर सैकडे के अंकोँ के **योग** १९ के **नव** को

तो ऊपर की पाँती के **तीन** को **मार कर** उस की जगह लिखेँगे और **हाथ आए एक** को ऊपर की पाँती मेँ हजार के अंक एक मेँ मिला कर दो को **एक को मार** उस की जगह रक्खेँगे । इसी तरह आगे भी करते जायँगे । इस **उत्क्रम-क्रिया** मेँ ऊपर की पाँती के **अंक** कई वार **मारने** पडते हैँ इस लिये संस्कृत के **ज्यौतिषी (गणक)** व्यवहार मेँ सदा **क्रम-क्रिया** से योग करते हैँ ।

अब आज कल बहुत लोग निचली पाँती के नीचे एक **तिरछी रेखा** कर उस के नीचे योग के अंकोँ को लिखते हैँ जैसा कि **स्कूलोँ** के लडके लिखते हैँ ।

संस्कृत के **गणक** कागज पर जोडना नहीँ कर सकते क्योँकि उन लोगोँ को ऊपर की पाँती के **अंकोँ** को **मारना** और उन की जगह **नए अंकोँ** को लिखना पडता है ।

हाथ आए एक, दो,··· यह परंपरा से जो बोली चली आती है उस से साफ साफ जाहिर है कि दहाई, सैकडा, हजार,··· स्थानोँ के लिये **पुराने** लोगोँ **ने** जो अपने पास बहुत **घास की जड, बाँस के टुकडे,**··· हिसाब के लिये रख लेते थे उन मेँ से जोड मेँ जिस की जितनी जरूरत पडती थी उतने **हाथ** मेँ ले लिए जाते थे । जैसा ऊपर के उदाहरण मेँ **एकाई** के अंकोँ के **योग** १७ मेँ ७ को तो एकाई की जगह मेँ रख लिया और एक दहाई के लिये **नागरमोथे की एक जड** हाथ मेँ ले ली । फिर इस जड को और दहाई की जडोँ मेँ मिला देने से जो १८ जडेँ हुईँ उन मेँ से ८ तो दहाई की जगह रख ली गईँ और दश जडोँ को अलग रख उन के स्थान मेँ एक बाँस का टुकडा हाथ मेँ ले लिया गया ।

मेरी समझ मेँ पुरानी चाल उठ जाने पर भी पुरानी बोली नहीँ उठी । सब जगह **'हाथ आए या हाथ लगे'** प्रचलित है ।

तुलसीदास ने भी अपनी दोहावली में लिखा है—

"**तुलसी–पति** रति अंक सम सकल साधना सून।
अंक-रहित कछु **हाथ नहिं** अंक-सहित दस-गून॥"

घटाने के लिये **क्रम-रीति** और **उत्क्रम–रीति** दोनों लिखी हैं, पर संस्कृत के **गणक उत्क्रमरीति** ही से घटाते हैं। वे लोग इस रीति से घटाते हैं—

मान लो कि **१२७८१** में ९६८३ को **घटाना** है तो जिस में **घटाना** है उस **'वियोज्य'** को उपर और जिसे घटाना है उस **'वियोजक'** को यथास्थान नीचे रखने से

१२७८१ ९६८३	} ऐसा हुआ। अब **उत्क्रम-रीति** में बड़े स्थान

से घटाने में ऐसा बोलते हैं — **दो** में **नव** नहीं **घटता (जाता)** इस लिये एक को किया **शून्य** आए दश, दश और दो बारह, **बारह** में गए **नव** रहे तीन, (१२ को मार कर इस की जगह तीन रखते हैं)। **सात** में गए **छ** रहा एक (७ को मार कर इस की जगह एक रखते हैं)। **आठ** में गए **आठ** रहा **शून्य** (ऊपर के आठ को मार कर इस की जगह शून्य रखते हैं)। एक में **तीन** नहीं घटता (जाता) इस लिये ऊपर के सैकडे के एक को किया **शून्य** और **शून्य** को किया **नव** आए दश, दश और एक ग्यारह, ग्यारह में गए **तीन** रहे **आठ**। ऐसा करने से बाकी (शेष) = ३०९८।

इस तरह ऊपर के अंक में जब नीचे का अंक नहीं घटता तब उस के बगल के बडे स्थानांक में एक कम कर उस अंक को उस बडे स्थानांक को मार कर उस की जगह लिखते हैं और ऊपर उस स्थानांक में दश जोड कर उस जोड में नीचे के **स्थानांक** को घटा कर **शेषांक** को ऊपरवाले **स्थानांक** की जगह उस को मार कर लिखते हैं।

क्रम–क्रिया में भी यही रीति है, विशेष इतना ही है कि एकाई से घटाना **आरंभ** होता है पर इस में ऊपर के अंक कई बेर मिटाने पडते हैं इस लिये कोई **ज्यौतिषी** इस रीति से नहीं घटाता।

सब लोग **उत्क्रम-रीति** ही को अच्छी तरह सीखते हैं। इस घटाने को संस्कृत में **व्यवकलित** या **व्यवकलन** कहते हैं ये भी कल (शब्दसंख्यानयोः) धातु से बने हैं। वि और अव उपसर्ग लगाने से इन का अर्थ अलगाना है। **'वियोग'** और **'अन्तर'** भी घटाने के अर्थ में आते हैं।

साठगुने स्थानांक–संख्याओं का जोडना और घटाना।

साठगुने जहाँ स्थान हैं याने अंश, कला, विकला और प्रतिविकला या दिन, घटी, पल और विपल हैं वहाँ संस्कृत के **ज्यौतिषी** इस तरह जोडते है—

(पहले लिख आए हैं कि संस्कृत के **ज्यौतिषी** साठगुने स्थानों को बडे स्थान के नीचे छोटे स्थानांक को खडी पाँती में लिखते हैं।)

मान लो कि २ दिन, १९ घटी, २५ पल और ३७ विपल और ३ दि., २१ घ., १७ प., और ३८ विपल को जोडना है तो

२ १९ २५ ३७	३ २१ १७ ३९	} ऐसे लिख कर नीचेवाले स्थान से जोड़ना शुरू

करते हैं। ३७ और ३९, ७६, (७६ के १६ को ३७ या ३९ को मार कर उसकी जगह रखते हैं) ७६ के **१६**, हाथ **आया १**, १ और २५, २६, २६ और १७, ४३, (२५ या १७ को मार कर उसकी जगह ४३ रखते हैं)। १९ और २१, ४०, (१९ या २१ को मार कर उसकी जगह ४० रखते हैं)। २ और ३, ५, (२ या ३

को मार कर उसकी जगह ५ रखते हैं)।

घटाने में **वियोज्य** के विपल, पल, ... से **वियोजक** का विपल, पल,... बड़ा हो तो ऊपर स्थान के अंक में **एक** कम कर **वियोजक** के विपल, पल,... को ६० में घटा कर बाकी को **वियोज्य** के विपल, पल,... में **जोड़** देते हैं ।

जैसे— ३ दि., १७ घ., २० प., २१ वि. में जौं १ दि., १९ घ., २२ प. और २७ वि. घटाना हो तो—

३	१
१७	१९
२०	२२
२१	२७

} ऐसा लिख कर क्रिया करने में जौं नीचे स्थान से आरंभ करेंगे तो ऐसा बोलेंगे—

२१ में २७ नहीं घटते इस लिये २० के किए १९ आए **साठ,** साठ में गए २७ रहे ३३, ३३ और २१, ५४, (२१ को मार कर उस की जगह ५४ रखते हैं और २० को मार कर वहाँ १९ रख लेते हैं) फिर १९ में २२ नहीं घटते इस लिये १७ के किए १६, आए साठ, साठ में गए २२ रहे ३८, ३८ और १९, ५७ (१९ को मार कर उस की जगह ५७ रखते हैं और १७ को मार कर उस की जगह १६ रखते हैं)। इसी तरह ऊपर तक क्रिया करते जाते हैं । ऊपर के **उदाहरण** में शेष =

१
५७
५७
५४

}। **ज्यौतिषी** लोग अकसर घटाने की **क्रिया** को **ऊपर** के स्थान से **शुरू** करते हैं, याने यहाँ पहले ३ में १ घटाते फिर इस शेष में एक कम कर ६० ले आते, इस में **वियोजक** के १९ को घटा कर शेष ४१ को वियोज्य के १७ में जोड कर उसे १७ को मार कर उस के स्थान में रखते । इसी तरह नीचे तक क्रिया करते जायँगे ।

पुराने समय में **कंकड, पत्थर** के टुकडे या **काठ** की **गोटिओं** से अंक समझे जाते थे। **गवाँरो** में अब तक **कंक-**

डिओं से जोडती की जाती है। **तमोली** लोग अब तक **चूने** की **बिंदी** लगा कर समझ लेते हैं कि इतने **पान** के **चौंभडे** हुए।

पटरे पर **धूर** या **बालू** फैला कर उस पर **गोटिओं** के सहारे से भी हिसाब होता था। **एजिप्ट** और **ग्रीस** में भी यही चाल थी।

हीरादत्त (*Herodotus*) लिखते हैं कि **ग्रीक** लिखने और हिसाब करने में अपने **हाथ** को **बाईं ओर** से **दहिनी** ओर ले जाते हैं पर **एजिप्ट के** लोग **दहिनी** ओर से बाईं ओर ले जाते हैं ।

यूरप में भी सन् १५०० ई. तक सब जगह **गोटिओं** (*Caniors*) पर से हिसाब करने की चाल थी पर जब सब से पहले **इटली** और **स्पेन** के लोग **अरब** से **हिंदुओं** के अंक पाए तब से धीरे धीरे **गोटिओं** की चाल उठ गई। **फरासीस, इंगल्यांड** और **जर्मनी में** स. १६५० ई. तक **गोटिओं की** चाल थी।

जर्मनी में सन् १६६२ ई. में एक अंकगणित की पोथी छापी गई (*Arithmetica Calcularis or Arithmetica mercatoria*) उस में **'बनिओं का गणित'** इस नाम का एक अध्याय है। उस में लिखा है कि एकाई, दहाई, सैकडा, हजार, दशहजार और दशलाख के लिये एक के नीचे एक ऐसी **सात तिरछी रेखाएँ** मान ली गई हैं सब से नीची रेखा **एकाई** की और उस के ऊपरवाली क्रम से १०, १००, की मानी गई हैं । किसी स्थान का अंक जौं **एक गाही (५) से बडा** हो तो उस में से एक गाही को निकाल कर बाकी अंक के बराबर उस स्थान की रेखा पर **गोटिओं** को रख देते हैं और उस के ऊपर उसके ऊपरवाले स्थान की रेखा के नीचे उस **गाही** के लिये **एक गोटी** को रख देते हैं । इस तरह से **बनिएँ** संख्या

लिख लेते हैँ । जैसे—

= ६३१८६१७
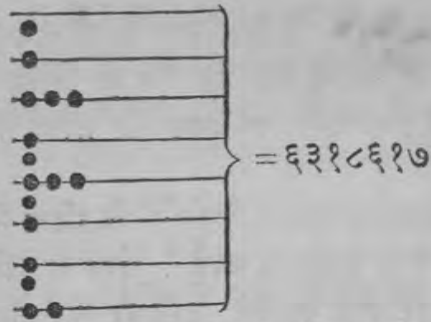
जो दो संख्याओँ को जोड़ना हो तो ऊपर की रीति से संख्याओँ के स्थानांकोँ को **तिरछी रेखाओँ** के ऊपर लिख कर एक एक स्थान की **गोटिओँ की** गिनती कर **गाहिओँ** को ऊपर रखते और **दो गाहिओँ** को ऊपर के एक **स्थानांक** के बराबर करते ऊपर तक चले जाते हैँ । जैसे ७६८ और ४८९ को जोड़ना हो तो ऊपर की रीति से —

पहली दो खड़ी पाँतिओँ मेँ ७६८ और ४८९ संख्याएँ और तीसरी खड़ी पाँती मेँ उन का योग १२५७ है ।
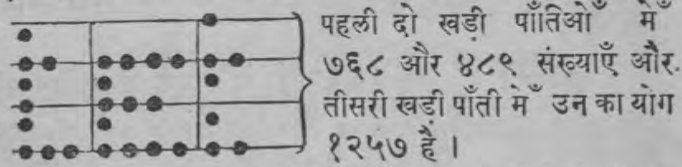
इसी तरह **घटाने** मेँ जौँ **वियोजक गोटिओँ** की गिनती **वियोज्य** की **गोटिओँ** से बड़ी हो तो ऊपर से एक **गाही** उतार लेते हैँ । जौँ **गाही** की गिनती **बडी** हो तो ऊपर के स्थान की एक **गोटी** उतार कर दो **गाही** और कर लेते हैँ । जैसे ऊपर के **उदाहरण** मेँ जौँ पहली संख्या मेँ दूसरी को **घटाना** हो तो ऊपर की रीति से

पहली **खड़ी पाँती मेँ** वियोज्य, दूसरी मेँ वियोजक और **तीसरी मेँ** शेष २८९ है ।
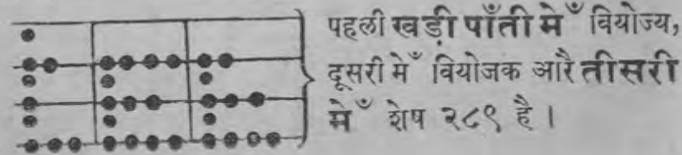
सात ही रेखाओँ के लेने से जान पडता है कि उस समय एक **करोड** के भीतर ही लेन देन का व्यवहार था ।

अरब के **अलकल्सडी** अपने **गुबारगणित की पोथी** मेँ, **योग** और **शेष** को सब के ऊपर एक **लकीर** दे कर लिखा है । जैसे— **३३८** और ४६ का योग उन की रीति से (३८४ / ३३८ / ४६) और शेष (२९२ / ३३८ / ४६) ऐसे लिखे जायँगे ।

अंकोँ का गुणन और भागहार ।

जिस से गुणते हैँ उसे **गुणक** और जिसे गुणते हैँ उसे **गुण्य** कहते हैँ । कभी कभी **गुणक** को **गुण** भी कहते हैँ । **गुण्य** को **गुणक**–तुल्य स्थान मेँ रख कर **जोड देने** ही को **गुणन** कहते हैँ इस लिये **गुणन** एक तरह की **योगक्रिया** ही है ।

जिस मेँ **भाग** देते हैँ उसे **भाज्य** और जिस से **भाग** देते हैँ उसे **भाजक** कहते हैँ । **भाज्य** मेँ जै बार **भाजक** घट जाय उसे **लब्धि** या **फल** कहते हैँ । इस तरह से कह सकते हैँ कि **भागहार** एक **घटाने का** लघुप्रकार है ।

गुणने के लिये पहले लोग कम से कम **नव** तक के पहाडे याद करते हैँ । **संस्कृत** के ग्रन्थोँ मेँ इस **पहाड़े** की कहीँ चर्चा नहीँ है । **अक्षर** और **अंकोँ** की सूरत और **पहाड़े** वगैरह सब जगह बहुत प्रसिद्ध होने से छोड दिए गए । **भास्कर** ने अपनी **लीलावती** के **परिभाषा–प्रकरण** के अंत मेँ लिखा है कि 'शेषा कालादि**परिभाषा** लोकतः प्रसिद्धा ज्ञेया' याने बाकी दिन, घटी वगैरह की **परिभाषा** संसार मेँ प्रसिद्ध हैँ उन्हेँ **लोगोँ** से जान लो । **मिथिला** मेँ **पहाड़े** को **'दुनाई'** कहते हैँ, इसी तरह जुदे जुदे देशोँ मेँ इस के जुदे जुदे नाम हैँ पर हम लोगोँ को इस का **संस्कृत** नाम नहीँ मिलता । **तुलसीदास** ने भी सतसई मेँ इस का नाम **पहाड़ा** लिखा है 'नव के लिखत **पहार**'।

इस में दूने, तिगुने, ... **अंक** बढते जाते हैं इसी लिये शायद इस का नाम **पहाड़** (पर्वत) रक्खा गया हो क्यों कि **पहाड़** भी एक से दूसरे ऊचे और बड़े देख पड़ते हैं। **हिंदुओं** की गिनती में **दशगुने स्थान** होने से **१-९ अंकों** के पहाड़े में एकगुने से दशगुने तक **अंक** रहते हैं। **गुरु** लोग लड़कों को हिसाब में पक्का करने के लिये **चालीस** तक के पहाडे कंठ कराते हैं। **रोमन** में **बारहगुने** स्थान होते हैं इस लिये **यूरप** में १-१२ तक के पहाडे में सब अंक १-१२ गुने रहते हैं।

अँगरेजीराज के पहले व्यवहार के बहुत से हिसाब **मुँह-जबानी** हो जायँ इस के लिये **हिंदुस्तान** में **पौना, सवैया, डेढा, अढइया, हूठा, धौंचा** और **पौंचा** कंठ किए जाते थे। अब भी बनिएँ अपने लडकों को **पौना, सवैया** और **डेढा** तो जरूर ही सिखाते हैं।

पौने में संख्या $\frac{३}{४}$, **सवैए** में $\frac{५}{४}$, **डेढे** में $\frac{३}{२}$, **अढैए** में $\frac{५}{२}$, **हूठे** में $\frac{७}{२}$, **धौंचे** में $\frac{९}{२}$, और **पौंचे** में $\frac{११}{२}$ गुनी रहती हैं। ४ **पौने** ३, ४ **सवाई** ५, ४ **डेढे** ६, ४ **अढाई** १०, ४ **हूठे** १४, ४ **धौंचे** १८ और ४ **पौंचे** २२ होते हैं। कहीं कहीं **विकट पहाडे** की भी चाल है। उस में $\frac{३}{२}$ यह संख्या $\frac{३}{२}$, $\frac{५}{२}$, $\frac{७}{२}$, $\frac{९}{२}$, $\frac{११}{२}$ और $\frac{१३}{२}$, गुनी रहती है। जैसे **ड्योढे ड्योढे सवा दो** ($\frac{९}{४}$), **ड्योढ अढाई पौने चार** ($\frac{१५}{४}$),...।

एक **एकन्ना** भी होता है इस में १-१०० के वर्ग रहते हैं।

एकन्ना एक, दुआ दुइ चार, त्रि तिका नव, चार चौक १६, ... ऐसे बोले जाते हैं।

एक **बडा ग्यारहा** भी होता है उस में ११-२० संख्याएँ, ११-२० गुनी तक रहती हैं। जैसे **ग्यारह ग्यारहं १२१, ग्यारह बारहं १३२, ग्यारह तेरहं १४३,...। बारह ग्यारहं १३२, बारह बारहं १४४, बारह तेरहं १५६,...।**

बीस ग्यारहं २२०, बीस बारहं २४०,...।

मिथिला प्रांत में एक **बड़ा पौना** भी होता है उस में $\frac{७}{४}$ याने पौने दो गुनी संख्याएँ रहती हैं।

पौना, सवैया, डेढ़ा, अढ़इआ, क्रम से **पादोन, सपाद, अध्यर्ध,** और **अध्यर्धाद्धि** संस्कृत शब्द के अपभ्रंश तो साफ साफ मालूम होते हैं पर **अध्यर्धत्रि, अध्यर्धचतुः** और **अध्यर्धपञ्च** के अपभ्रंश **हूठा, धौंचा** और **पौंचा** के होने में कुछ संशय होता है, शायद **संस्कृत** के शब्द कुछ **प्राकृत** में बिगड़े फिर **प्राकृत** के वे शब्द और **बिगड़ कर हिंदी** में **हूठा, धौंचा** और **पौंचा** हुए हों।

जब से गावँ गावँ में **तहसीली स्कूल** जारी हुए हैं तब से **पौना, सवैया,...** सिखाने की चाल उठ गई है अब लड़कों को कुछ **पहाड़े** सिखा दिए जाते हैं।

हिंदूलोग बीजगणित में बहुत निपुण होते चले आए, पर बड़े दुःख की बात है कि **तहसीली स्कूलों** से **बीजगणित** उठा दिया गया। अब लड़कों के मन में उस का संस्कार ही नहीं पैदा होता इस लिये बड़े होने पर वे क्या **बीज** का विचार कर सकेंगे।

संस्कृत में गुणन की **छ रीति हैं**। **गणेश ने** सन् १५२० ई. में एक **सातवीं** रीति भास्कर-**लीलावती** की टीका **बुद्धिविलासिनी** में दिखाई है पर वह रीति प्रचलित नहीं है। इस तरफ इस रीति को **मुसल्मान** लोग **'जरब कोठरी'** कहते हैं। बहुतों का मत है कि **अरब** के लोग इस रीति को निकाले हैं। वे लोग इस रीति को **शहाबकः** (*Shahabacah*) कहते हैं।

जरबकोठरी की रीति—

गुण्य और **गुणक** के स्थान तुल्य **भुज कोटि** मान कर

एक **आयत** बना लो, उस में **भुज-कोटि** के घात तुल्य याने **क्षेत्रफल** तुल्य वर्ग कोठे बना कर **कर्ण खीँच** कर हर एक **वर्ग कोठे** का दो हिस्सा कर डालो **गुण्य** के स्थानांकोँ को भुज के ऊपर और **गुणक** के स्थानांकोँ को **कोटि** के ऊपर क्रम से रख कर **गुणक के** प्रत्येक **स्थानांक** से **गुण्य** के स्थानांकोँ को गुणा कर गुणनफल की हर एक एकाई अपने अपने **वर्गकोठे** के **कर्ण** की दहनी ओरं और हाथ आए को बाईँ ओर रखते जाओ फिर **कर्ण रेखाओँ** के भीतर तिरछे **अंकोँ का योग** करने से **गुणन-फल** हो जायगा।

जैसे जौँ **गुण्य** = २५६७ और **गुणक** = ६७८ तो ऊपर की क्रिया से

गुणनफल = १७४०४२६

नेपिअर साहब भी इसी तरह गुणा करते थे। वे रेखाओँ की जगह पतली पतली चौखूटी लकडिआँ रखते थे जिन पर १–९ तक के पहाडे खोदे हुए थे। उन के व्यवहार करने से इन **लक-डिओँ** का नाम ही '*Vergulae or rods of Nepier*' पड गया है। **यूरप** में सब से पहले जिस पोथी में इन लकड़िओँ का वर्णन है वह **स. १६१७** ई. में **राब्डोलोगिआ** (*Robdologia*) नाम से छापी गई और **च्यांसलर सेटोन** (*Seton*) को अर्पण की गई। **सेटोन** (*Seton*) को इस बात का बडा गौरव था कि मेरे समय में गुणन करने के एक छोटे यंत्र और **लघुरिक्थ** (*Logarithm*) का पता लगा क्योँकि **नेपिअर**

(*Nepier*) ने एक तरह का **लघुरिक्थ** भी निकाला है।

उस के बाद सन् १६२५ और सन् १६५० ई. के बीच में जितनी अंकगणित की पोथिआँ छापी गईँ सभी में इस **गुणन-यंत्र** का वर्णन है।

पिकाक साहब के मत से **दशमलव** गणित के निका-लनेवाले भी **नेपिअर** ही हैँ क्योँकि सब से पहले इस का वर्णन उन्हीँ की **राब्डोलोगिआ** (*Rabdologia*) में है। सन् १६१९ और सन् १६३१ ई. के बीच में **यूरप** में जितनी **अंकगणित** की पोथिआँ हैँ किसी में **दशमलव** गणित की चर्चा नहीँ है। इस का अधिक विचार **दशमलव** के प्रकरण में किया जायगा।

गुण्य और **गुणक** दोनोँ **गुण** (आमन्त्रणे) धातु से बने हैँ, जो गुणने के लायक वह **गुण्य** और जो गुणे वह **गुण** या **गुणक** कहाता है।

गुणन में **गुण्य** के अंक मारे जाते हैँ इस लिये **बध, हनन, ताडन, निघ्न,**… ये सब **'मारने'** अर्थ के शब्द **गुणन** के लिये बोले जाते हैँ।

गुणन की **छ** रीतिओँ में सब से पहली रीति प्रधान है। सब **संस्कृत** के **ज्योतिषी** इसी पहली रीति से गुणा करते हैँ।

पहले लिख आए हैँ कि पुराने लोग **जमीन** या **पटरे** पर **धूर** फैला कर उस पर **हिसाब** करते थे, उसी पर गुणन भी किया जाता था। **गुणन** में **अंक** बहुत न फैलेँ और **जमीन** या पटरे पर **जगह** भी बची रहे इस लिये वे लोग **अंकोँ** को मार कर उन की जगह नए नए **अंकोँ** को लिखते हैँ। इस पहली रीति का नाम **कपाट-संधि** है। संस्कृत में **केवाडे़ (पल्ले)** को **कपाट** कहते हैँ।

जैसे दरवाजे में एक **पल्ले** के ऊपर बंद करने पर दूसरा **पल्ला** कुछ चढा रहता है उसी तरह इस रीति में **गुण्य** के सब से बड़े स्थान के अंक के नीचे **गुणक** की एकाई रहती है इसी लिये इस का नाम **'कपाट–संधि'** रक्खा गया है।

गुणक के हर एक स्थानों के अंकों से **गुण्य** का सब से बड़े स्थान का अंक पहाड़े की रीति से गुण गुण कर **गुणक** के स्थानांकों के शिर पर रक्खा जाता है पर **गुणक** की एकाईवाले अंक से गुणने पर जो अंक होता है वह **गुण्य** के सब से बड़े स्थानांक के स्थान में उस को मार कर लिखा जाता है। हाथ आने पर उस को उस के **बगल**वाले अंक में मिला कर उस को मार कर उस के स्थान में लिखते हैं, फिर **गुणक** को उठा कर **गुण्य** के दूसरे बड़े स्थान के अंक के नीचे उसी चाल से रख कर ऊपर की क्रिया करते हैं। इस तरह **गुण्य** के सब स्थानों के अंकों के गुण जाने पर **गुण्य** के स्थान में **गुणनफल** आ जाता है। यह क्रिया **कागज** पर नहीं हो सकती तौ भी समझने के लिये एक उदाहरण दिखाते हैं।

गुण्य=२५७६ और **गुणक**=३४५ है तो **गुणनफल** जानने के लिये पहले **गुण्य** को और उस के नीचे **गुणक** को

२५७३
३४५ } ऐसा लिखते हैं। २ को **गुणक** के हर एक स्थानांकों से गुणने से और ऊपर की रीति से गुणे हुए अंकों को रखने से

६९० ५७६
३४५ } ऐसा हुआ। **गुणक** को घसका कर **गुण्य** के दूसरे स्थानांक ५ के नीचे उस की एकाई रख कर और सब स्थानों के अंक क्रम क्रम से बाईं ओर रक्खे जायँगे और फिर ऊपर ही की रीति से क्रिया की जायगी। आगे फिर **गुणक** को घसका कर उस की एकाई **गुण्य** के ७ के नीचे रक्खी जायगी। इस तरह **गुण्य** के

सब स्थानों के अंक गुण जाने पर ऊपर की पाँती में **गुणनफल** होगा।

आर्यभट ने अपने **आर्यभटीय** में जो स. ४९८ ई. में बनाई गई है इस रीति को प्रसिद्ध समझ कर छोड़ दिया है। **ब्रह्मगुप्त** ने अपने **ब्राह्मस्फुट-सिद्धान्त** के, जो सन् ६२८ ई. में बना है **गणिताध्याय** (अंकगणित) में इस की चर्चा प्रसिद्ध समझ कर न की। **श्रीधर** ने अपनी **त्रिशतिका** में इस रीति का नाम **'कपाटसंधि'** लिखा है और **गुणनफल** का नाम प्रत्युत्पन्न रक्खा है। **ब्रह्मगुप्त** ने भी **गुणनफल** का नाम प्रत्युत्पन्न ही लिखा है। **क्यांटर** (*Cantor*) ने भूल से **गुणनफल** का संस्कृत नाम **'तत्स्थ'** लिखा है। **श्रीधर** का सूत्र यह है—

"उत्सार्योत्सार्य ततः कपाटसन्धिर्भवेदिदं करणम्।
तस्मिँस्तिष्ठति यस्मात् **प्रत्युत्पन्न**स्ततस्तत्स्थः॥"

इस में **'तत्स्थ'** का उस जगह रहनेवाला यह अर्थ है (त्रिशतिका देखो)।

गुण्य की जगह जो फिर पैदा हो उसे **प्रत्युत्पन्न** कहते हैं। प्रति, उत् उपसर्ग और पद (गतौ) धातु से **प्रत्युत्पन्न** बना है।

भास्कर ने अपनी **लीलावती** में सब से पहले इस **गुणन-रीति** को लिखा है पर इस का नाम नहीं बताया है।

दूसरी रीति में गुणक के मन माने खंड कर हर एक खंड से गुण्य को **गुण** कर सब जोड लेने से **गुणनफल** निकाला है। यह वही रीति है जो **रेखागणित** के दूसरे **अध्याय** की दूसरी **शकल से** सिद्ध होती है।

तीसरी रीति में **गुणक** में ऐसी संख्या का भाग देते हैं जिस में पूरी लब्धि आवे। फिर उस संख्या से **गुण्य** को गुण कर गुणे हुए को उस **लब्धि** से गुण देते हैं वही **गुणनफल होता है**। जैसे १२×१३५=३×४×१३५।

चौथी रीति वही है जो आज कल सब **स्कूलों में** जारी है और जिसे लोग भूल से कहा करते हैं कि **अँगरेजी** रीति है।

पाँचवीं और **छठवीं** रीति दूसरी रीति ही के अन्तर्गत है।

गोमूत्रिका-गुणन।

जहाँ **गुण्य** और **गुणक** में अंश, कला, विकला या दिन, घटी, पल, विपल रहते हैं वहाँ संस्कृत के **ज्यौतिषी** लोग जिस रीति से **गुणा** करते हैं उस रीति को **गोमूत्रिका** कहते हैं। पुराने ग्रंथों में इस का नाम नहीं मिलता पर परंपरा से बहुत पुराने समय से इस का व्यवहार चला आता है। ऐसा कोई **ज्यौतिषी** न होगा जो इस का नाम न जानता हो। **गोविंदाचारी** ने सन् १८३६ ई. में अपने **साधनसुबोध** ग्रंथ में ('गोमूत्रिकयाऽभिताडिता') इस की चर्चा की है यह **गुणन** एक तरह का **खंडगुणन** है जिसे ऊपर **दूसरी रीति** लिख आए हैं। जैसे २ दि. १५ घ. ५३ प. और ३२ वि. से ४ अंश. २ कला. ९ विक. को गुणना हो तो यहाँ गुणक में चार **महल** हैं इस लिये एक एक स्थान बढा कर नीचे चार जगह **गुण्य** को रखने से और **गुणक** के हर खंड से गुण कर स्थानों को जोड कर फिर साठ से भाग दे दे कर ऊपर चढा देने से **गुणनफल** हो जाता है। जैसे ऊपर की क्रिया से

```
 २ | ४ । २ । ९ ।
१५ |     ४ । २ । ९ ।
५३ |         ४ । २ । ९ ।
३२ |             ४ । २ । ९ ।
```

गुणक के हर एक खंड से गुण देने पर

```
८ ।  ४ ।  १८
     ६० ।  ३० । १३५
           २१२ । १०६ । ४७७
                 १२८ ।  ६४ । २८८ ।
```


बराबर स्थानों के अंकों को जोड देने से

८ । ६४ । २६० । ३६९ । ५४१ । २८८

साठ से भाग दे कर ऊपर चढा देने से

गुणनफल = ९ । ८ । २६ । १८ । ५ । ४८

जौं **साठ गुने** स्थान के बदले **दश गुने** हों तो यह **गोमूत्रिका रीति** एक तरह की **भास्कर** की **चौथी रीति** हो जाती है जो कि आज कल सब **स्कूलों में** जारी है।

जैसे २३५ से १२२३ को गुणना हो तो

गोमूत्रिका रीति से—

```
२ | १२२३   }                  २४४६
३ |  १२२३  } गुण देने से        ३६६९
५ |   १२२३ }                      ६११५
                               ________
जोड देने से गुणनफल           = २८७४०५
```

देखो जो रीति आज कल **स्कूलों** में प्रचलित है यह वही रीति है इस में भेद इतना ही है कि जिस तरह से **तिरछी पाँती प्रचलितरीति** में रहती हैं उस से **उलटी** इस में हैं।

इस क्रिया में **गुण्य के** अंक कई जगह आगे आगे रहते हैं। जैसे चलती **गाय** के **मूत्र** से जमीन पर **टेढी** पानी की **धारा** से **रेखा** हो जाती है उसी तरह इस में **गुण्य** की कुछ सूरत होने से लोग इसे **गोमूत्रिका** कहते हैं।

सभी चलते जानवरों के **मूत्र** से ऐसी टेढी **रेखा होती** है पर सब **जानवरों** से **गाय** को पवित्र समझ कर **संस्कृत** के **गणकों ने** इस का नाम **'गोमूत्रिका'** रक्खा।

भारवि ने अपने **किरातार्जुनीय काव्य** के १५ वें सर्ग के १२ वें श्लोक—

"नासुरेयं न वा नागो धरसंस्थो न राक्षसः।
नासुखोयं न वा भोगो धरणिस्थो हि राज सः॥

को **गोमूत्रिकाबन्ध** किया है।

संस्कृत के **ज्यौतिषी** अपने सुभीते के लिये कभी कभी **गुण्य** और **गुणक** को बदल देते हैं याने **गुण्य** को **गुणक** और **गुणक** को **गुण्य** मान कर **गुणनफल** निकालते हैं और **'गुण्य-गुणकयोः परस्परं कामचारः'** याने **गुण्य** और **गुणक** में आपस में **भइआचारा** है याने अदल बदल देने से **गुणनफल** में कुछ विकार नहीं होता, यह कहा करते हैं।

जर्मनी में जो सन् १६६२ ई. में **अंकगणित** की पोथी छपी है उस में **गोटिओं** पर से जो **गुणन-क्रिया** लिखी है उस की रीति—

गुण्य और **गुणक** के स्थानांकों को **गोटिओं** की रीति से, जैसा ऊपर कह आए हैं रख कर **गुणक** की एकाई से **गुण्य** के हर एक स्थानांकों को गुण कर **गुणनफल** तीसरी खडी पाँती में रक्खो फिर **गुणक** की दहाई के अंक से **गुण्य** के हर एक स्थानांकों को गुण कर **गुणनफल** चौथी खडी पाँती में **दहाई** की रेखा पर से रखना **शुरू** करो। इस तरह हर एक वार एक एक रेखा छोडते ऊपर अंकों को रखते जाओ।

पीछे सब अंकों को जोड कर अगली खडी पाँती में रख दो वही **गुणनफल** होगा। जैसे **गुण्य** = २३४५ और **गुणक** = २३ तो

गुणनफल = ५३९३५ होगा। इस **क्रिया** और **प्रचलित क्रिया** में कुछ भेद नहीं है वहाँ अंकों से तिरछी पाँती में संख्या रक्खी जाती है यहाँ **गोटिओं** से **खडी पाँती** में संख्याएँ हैं।

इटली में *Lucas de Burgo* ने **गुणन** की **आठ रीति** लिखी है वे सब ऊपर लिखी हुई रीतिओं ही के भेद हैं। इस का **अंकगणित** सन्. १४९४ ई. में छापा गया है उस का नाम **समा ड अरिथमेटिका** (*Samma de Arithmetica*) है।

भाग-हार—

अपनी अपनी चाल से **गुणने** और **घटाने** पर सारे संसार में इस की दोही रीति है। एक **भाज्य** और **भाजक** में विना **अपवर्त्तन** दिए और दूसरी **अपवर्त्तन** दिए है। विना **अपवर्त्तन** या **अपवर्त्तन** देने पर **भाज्य** के सब से बडे स्थान से **क्रिया** आरंभ होती है। वहाँ से क्रम क्रम से **लब्धि-गुणा हार** (भाजक) **भाज्य** में घटाया जाता है। **भाग** करने लायक जो हो उसे **भाज्य** और भाग करनेवाले को **भाजक** कहते हैं या भाग **हरने**वाले को **हार** (भाजक) भी कहते हैं। **भज** (सेवायां) धातु से कर्म में घञ् प्रत्यय करने से भज्यते इति **भागः** बनता है। इसी **भाग** के अर्थ में **अंश** (विभाजने) धातु से कर्म में घञ् प्रत्यय करने से **'अंश'** बनता है। इसी अर्थ में **लूञ** छेदने से **लव** बना है। **हृ** हरणे से **हार** बनता है। **भाग** को जो हरे याने ले उसे **भाग-हार** कहते हैं। **हार** के अर्थ में **छिदिर्** (द्वैधीकरणे) धातु से **छेद** बना है।

ब्रह्मगुप्त ने ऊपर की रीति के आधार से एक नई रीति लिखी है—

भाजक में कुछ **इष्ट** जोड या घटा कर नया **भाजक** बनाओ। नए **भाजक** से **भाज्य** में भाग देकर **लब्धि** निकालो। इस **लब्धि** को **इष्ट** से गुणा कर पुराने **भाजक** से भाग देने पर जो **लब्धि** मिले इसे पहली **लब्धि** में क्रम से **जोड घटा** दो याने **भाजक** में **इष्ट** जोड कर नया **भाजक** बनाया गया हो तो

जोडो और **इष्ट** घटा कर नया **भाजक** बनाया गया हो तो **घटाओ।** यह नई रीति नहीं है पुरानी ही के आधार से निकली है (**मेरा छपवाया ब्राह्मस्फुट-सिद्धान्त के छायाधिकार का ५७ वाँ श्लोक देखो)।**

गर्बर्ट (*Gerbert*) ने भी अपनी पोथी में इसी रीति को लिखा है। ये बडे नामी **आदमी** थे। इन के विद्यार्थी महाराज तीसरे **ओथो** (*Otho III*) ने इन्हें दूसरे **सिल्वेस्टर** (*Sylvester II*) के नाम से **पोप** (*Pope*) बनाया था। ये सन् १००३ ई॰ में मरे हैं।

जौं ध्यान देकर विचारो तो **गुणन** की पहली रीति **'कपाट-संधि** की ठीक उलटी क्रिया **भाग-हार** है। **संस्कृत** के **ज्यौतिषी भाग-हार** की क्रिया झट समझ में आ जाय इसी लिये **गुणन** की उस पहली रीति ही को अच्छी तरह से सीखते हैं।

सीख लेने पर **स्कूल** की **प्रचलित (चौथी) रीति** सीखेवालों से बहुत जल्दी गुणा करते हैं। इस **क्रिया** में दोष इतना ही है कि जौं कहीं बीच में **गलती** हो जाय तो फिर **शुरू** से **क्रिया** करनी पडती है क्यों कि सब **अंक** तो बराबर मिटाए जाते हैं; उन की जगह नए नए लिखे जाते हैं इस लिये किस जगह **गलती** हुई इस का पता नहीं लगता। **भास्कर-लीलावती** की **मनोरंजनी टीका** और (*Lucus de Burgo*) के ग्रंथ में भाग देने की कई एक नई रीति हैं पर वे कहने के लिये नई हैं **हकीकत** में सब **पुरानी ही** रीति की दूसरी सूरत हैं।

गुणनफल और लब्धि को जाँचना।

९ अंक पर से **गुणनफल** और **लब्धि** को जाँचना याने ये दोनों गणित करने से **ठीक** आए या **गलत** इस के लिये जो स्थान

के अंकों के योग में **नव** घटा घटा कर बाकी निकालने की प्रसिद्ध रीति है उस को **अरब** के **ज्यौतिषिओं** ने अपने अपने ग्रंथों में लिखा है और कभी कभी लोग इसे **'हिंदू-उपपत्ति'** (*Hindu-Proof*) भी कहते हैं पर दूसरे **आर्यभट** के **महासिद्धान्त** को छोड़ कर और किसी प्रसिद्ध संस्कृत ग्रंथ में इस की चर्चा नहीं है। **नारायण पंडित** ने अपनी **गणितकौमुदी** में किसी अंक पर से गुणनफल जाँचने की विधि लिखी है—

'इष्टहृतगुण्यगुणकावशेषघातस्तथेष्टहृच्छेषम्।
तुल्यं चेदिष्टोद्धृतिशेषेण स्यात् स्फुटात्र हतिः॥'

यूरप में **ल्यूकस ड बर्गो** (*Lucas de Burgo*) ने अपने **अंकगणित** में **जोड़ने, घटाने, गुणने** और **भाग** में इस रीति को लिखा है। उस ने ७ पर से भी एक विधि लिखी है पर उस रीति में संख्याओं में ७ का भाग देना पड़ता है। इस से अच्छी विधि ११ से है। इस में संख्याओं के विषम और सम स्थानांकों के योग में ११ से भाग देने पर जो दोनों जगह बाकी बचते हैं उन के अंतर पर से बाकी निकालते हैं या सब से बड़े स्थानांक को उस से दूसरे स्थानांक में **घटाना** बाकी को उस के आगेवाले **स्थानांक में घटाना** फिर इस शेष को उस के आगेवाले **स्थानांक में घटाना** इस तरह अंत में जो शेष बचे वही संख्या में **११ के** भाग देने से शेष बचेगा। पहला स्थान संबन्धि अंक जौं आगे के स्थानांक में न **घटे** तो स्थानांक में ११ जोड़ कर घटाना चाहिए। जैसे २४७८९६ इस में ४−२=२, ७−२=५, ८−५=३, ९−३=६, ६−६=०, इस से सिद्ध हुआ कि २४७८९६ यह संख्या ११ से निःशेष होगी और २८३४७१ इस में ८−२=६, यह अगले स्थानांक **३ में** नहीं घटता इस लिये ११ जोड़ देने से ३+११−६=८, ४+११−८=७, ७−७=०, १−०=१। इस लिये २८३४७१ इस में ११ के भाग देने से १ बचेगा।

अल हुशेन ने सन् (९८०–१०३७) में जोड़ने को जाँचने के लिये ९ की रीति लिखी है।

दूसरे आर्यभट ने अपने **महासिद्धान्त में गुणन, भजन, वर्ग, वर्गमूल, घन** और **घनमूल** के जाँचने के लिये इस रीति को लिखा है। वे इस रीति से बाकी निकालते हैं—

जैसे यह जानना हो कि ६७८९७६ इस में ९ का भाग देने से क्या बचेगा तो ६+७+८+९+७+६=४३, ४+३=७ यह एक स्थान की संख्या हुई इस लिये ६७८९७६ इस में **९ का** भाग देने से ७ बाक़ी बचेगा। (मेरा छपवाया **महासिद्धान्त का** १८ वाँ अध्याय देखो)

इसी तरह स्थानांकों के **योग** में जब तक एक से ऊपर **स्थान** रहेंगे तब तक हर एक योग के **स्थानांकों** का **योग** करते जायँगे।

जामुब्लिकस (*Jamblichus*) ने एक रीति लिखी है—

पास पास की **तीन संख्याओं** में जौं सब से **बडी संख्या ३ से** निःशेष हो तो उन **तीनों** संख्याओं के **योग** के स्थानांकों का **योग** करो, जौं इस **योग** में एक से **अधिक स्थान** हों तो फिर इन स्थानांकों का **योग** करो यों वार वार क्रिया करने से अंत में योग ६ होगा। जैसे—

६४, ६५, ६६, इन पासवाली **तीन संख्याओं** में सब से बडी **६६** तीन से निःशेष होती है इस लिये

६४+६५+६६=१९५, १+९+५=१५, १+५,=६।

यह वही बात है जैसा कि **दूसरे आर्यभट** ने लिखी है क्योंकि बडी संख्या जौं **३ य** मानो तो इस के पीछे की संख्या= ३ य–१ और इस के पीछे की=३ य–२ और तीनों का योग

=९ य–३=९(य–१)+९–३=९(य–१)+६, इस

लिये यहाँ ९ के भाग देने से ६ शेष रहते हैं इस लिये **दूसरे आर्यभट** की रीति से अंत में स्थानांकों का **योग** ६ होगा।

जौं यह **हिंदुओं** की रीति हो तो **भास्कराचार्य** के पीछे बनी होगी क्योंकि **भास्कराचार्य** ने ऐसी **उत्तमरीति** को अपनी **लीलावती** में नहीं लिखा जिन्हों ने यहाँ तक लिख दिया है कि किसी **क्षेत्र** में जौं एक **भुज** से और भुजों का **योग छोटा** या **बराबर** हो तो समझना कि यह **क्षेत्र** अशुद्ध है याने उन भुजों से **क्षेत्र** नहीं बनेगा।

इस से जान पड़ता है कि स. **१३५६** ई. के बाद यह **हिंदुओं** में प्रचलित हुई हो तो हो। इन सब बातों से यह अनुमान होता है कि सब से पहले **महासिद्धान्त** में यह रीति लिखी गई फिर पीछे से इसी रीति के आधार से आज कल की प्रचलित रीति निकली। **श्रीधर** वगैरह के समय में **महासिद्धान्त** का अधिक प्रचार न होने से उन लोगों का **ध्यान** इस रीति पर न गया।

किसी **बौद्ध ने** शायद इस प्रचलित रीति को निकाला हो जिसे **हिंदू** लोगों ने **धर्म** के भय से न देखा हो फिर इसी को **अरब** के **अलहुशेन** ने सन् ९८०–१०३७ ई. में ले लिया हो। जो हो पर ठीक ठीक **ल्युकस ड बर्गो** (*Lucas de Burgo*) की रीति किसी प्रसिद्ध संस्कृत ग्रंथों में नहीं पाई जाती।

इस में संशय नहीं कि **तुलसीदास** ने अपनी **सतसैया** में लिखा है कि जैसे **९ के पहाडे** में सब जगह (१८, २७, ३६, ...) के स्थानांकों के **योग** में ९ रहता है इस तरह इस संसार में सब जगह **राम** को समझ कर उन से **स्नेह** करना चाहिए। याने किसी क्षण में **राम** न भूलने पावें—

"**तुलसी राम** सनेह करु त्यागु सकल उपचार।
जैसे घटत न अंक **नव नव** के लिखत **पहार**॥

दुगुने तिगुने चौगुने पंच खसठ औ सात ।
आठहु तें पुनि नव गुने **नव** के **नव** रहि जात ॥"

वर्ग और घन ।

आर्यभट ने अपने **आर्यभटीय** के गणितपाद के ३ श्लोक में लिखा है कि समचतुर्भुज को **वर्ग** कहते हैं और दो बराबर संख्याओं (भुजों) के **गुणनफल** को उस **वर्ग** का फल कहते हैं। **तीन** बराबर संख्याओं के **गुणनफल** को **घन** कहते हैं याने **घन-क्षेत्र** का **फल** कहते हैं जो कि **बारह कोने** का होता है। उन का श्लोक—

"**वर्गः** समचतुरस्रः फलं च सदृशद्वयस्य **संवर्गः** ।
सदृशत्रय**संवर्गो घन**स्तथा द्वादशास्रः स्यात् ॥" यही है।

परमेश्वर 'द्वादशास्र' की टीका में लिखते हैं कि—

"हस्तोन्मितिदैर्घ्यपिण्डविस्तृतेः समचतुरस्रस्य स्तम्भादेर्यथा मूले तिर्यगायतानि चत्वार्यस्राणि भवन्ति। तथाग्रे चत्वारि। अधऊर्ध्वगतानि चत्वारि। एवं द्वादशभिरस्रैर्युतं **क्षेत्रं च घनसंज्ञं** भवतीति।" इन का लिखना ठीक **भास्कर** की **लीलावती के** ऐसा है। बात इतनी ही है कि दो बराबर संख्याओं का **गुणनफल वर्ग** और तीन बराबर संख्याओं का **गुणनफल घन** कहाता है। **वर्गक्षेत्र** का फल उस के एक भुज के **वर्ग** के बराबर और **घनक्षेत्र** का फल उस के एक भुज के **घन** के बराबर होता है।

इस से यह साफ मालूम देता है कि **आर्यभट** के समय **वर्गक्षेत्र** और **घनक्षेत्र** का प्रचार हो गया था।

ब्रह्मगुप्त ने अपने **ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त** के **गणिताध्याय** में **वर्गक्रिया** को बहुत प्रसिद्ध समझ कर छोड दिया है। संख्या का दो खंड कर **घनक्रिया** की दूसरी रीति लिखी है जो कि **भास्कर** की **लीलावती में** भी है। जैसे—

जौं $अ=क+ख$ तो $अ^३$
$=क^३+३क^२ख+३कख^२+ख^३$ ।

यही **ब्रह्मगुप्त** की रीति है, इसी को **भास्कर ने** भी ले लिया है। **भास्कर** ने **घन** करने की और दो विधि लिखी है। **(उन की लीलावती देखो)**

श्रीधर ने अपनी **त्रिशतिका (पाटीसार)** में **वर्ग** की चार विधि लिखी है—

(१) $अ^२=अ\times अ$ ।
(२) $अ=क+ख$ तो $अ^२=क^२+२कख+ख^२$ ।
(३) $अ^२=१+३+५+\cdots$ अ पद तक।
(४) $अ^२=(अ-इ)(अ+इ)+इ^२$ ।

भास्कर ने लीलावती में श्रीधर की (३) रीति छोड़ दी है।

पैथागोरास (*Pythagoras*) के स्कूल के **ज्यौतिषी श्रीधर** की (३) विधि जानते थे। उन लोगों ने यह भी दिखलाया है कि समसंख्याओं के **योग** से जो २, ६, १२, २०, ... ये संख्याएँ होती हैं, उन में ६, १२, २०, ३०, ... के ऐसे **गुण्य-गुणकरूप** दो खंड होते हैं जिनका अंतर एक होता है। जैसे— $६=२.३ \therefore ३-२=१$ । $१२=३.४ \therefore ४-३=१, \ldots$

श्रीधर ने **घन** करने की **तीन विधि** लिखी है—

(१) $अ^३=अ\times अ\times अ$ ।
(२) $अ=क+ख$ तो $अ^३=क^३+३क^२ख+३कख^२+ख^३$ ।
(३) $अ^३=(अ-१)^३+३अ(अ-१)+१$ ।

भास्कर ने अपनी **लीलावती** में (३) विधि छोड दी है उसके स्थान में एक नई विधि $अ^३=क^३+३क.ख(क+ख)+ख^३=क^३+ख^३+३क.ख.अ$ लिखी है जो कि (२) विधि की एक दूसरी सूरत है। नारायणपंडित ने श्रीधर की (३) विधि लिखी है।

ग्रीक निकोमाकस (*Nicomachas*) ने स. १०० ई. में **घन** करने की एक नई रीति लिखी है— जिस का **घन** करना हो उतनी **विषमसंख्याओं** का **योग**, पिछली **विषमसंख्याओं** को छोड कर, कर लो याने जौं न³ जानना हो तो पहले '**न²−न+१**' इस विषम संख्या को लो और इस के आगे '**न−१**' विषम संख्याओं को और ले कर सब का योग कर दो तो '**न³**' हो जायगा।

जैसे न=१, तो न²−न+१=१²−१+१=१= पहला **विषम** और न−१=१−१=० इस लिये न³=१³=१। जौं **न**=२ तो न²−न+१=२²−२+१=३ पहला विषम और

न−१=२−१=१ इस लिये २³=३+५=८। इसी तरह ३³=७+९+११=२७। ४³=१३+१५+१७+१९=६४, …।

इसी **निकोमाकस** के समय **ग्रीस** के लोग **अंकगणित** की ओर झुंके और तब से '**रेखागणित**' दब गया।

वृजी (**वर्जने**) धातु से कर्म में घञ् प्रत्यय करने से 'वृज्यते इति **वर्गः**' याने औरों (**गुणनफलों**) से जो अलग रहे वह **वर्ग** है।

हन (हिंसागत्योः) धातु से अप् प्रत्यय और घनादेश करने से **घन** बनता है (हन्यते त्रिभिः समैरङ्कैः इति घनः)। **हेमचन्द्रकोश** में लिखा है—

"संघे मुस्ते घनं मध्यनृत्तनादप्रभेदयोः।"

वर्गमूल और घनमूल।

आर्यभट ने **वर्ग** और **घन** की एक एक रीति लिखी है जो कि ऊपर दिखला आए हैं पर **वर्गमूल** और **घनमूल** निकालने में क्रम से **श्रीधर** की (२) वर्गविधि और **ब्रह्मगुप्त** की (२) **घनविधि** की उलटी क्रिया जो कि आज तक सब जगह प्रसिद्ध है, लिखी है।

ब्रह्मगुप्त ने **वर्गरीति** के ऐसा प्रसिद्ध समझ कर **वर्गमूल** निकालने की रीति नहीं लिखी पर **घनमूल** की वही रीति लिखी है जो कि आज कल प्रसिद्ध है।

श्रीधर ने अपनी **त्रिशतिका** (**पाटीसार**) में **वर्गमूल** और **घनमूल** की रीति, जो आज कल भी प्रसिद्ध है, लिखी है।

नारायणपंडित ने भी अपनी **गणितकौमुदी** में **श्रीधर ही** की रीति लिखी है।

यह सुन कर लोगों को बडा अचरज होगा कि **युक्लेद** (*Euclid*) को, जो कि **रेखागणित** का **आचार्य** समझा जाता है, **अंकों** पर से **वर्गमूल** निकालने की रीति नहीं मालूम थी। उसे यह भी नहीं मालूम था कि **त्रिभुज** में **लंब** और **भूमि** के **गुणनफल** का आधा **क्षेत्रफल** होता है।

पुराने **ग्रीस** लोगों का **अंकगणित** और **क्षेत्रफलों** के ऊपर बहुत ही कम ध्यान था। **आर्किमिडिज़** (*Archimedes*) ने वृत्त के फल के विचार में एक जगह लिखा है कि $\sqrt{३} < \frac{१३५१}{७८०}$ और $\sqrt{३} > \frac{२६५}{१५३}$, पर यह नहीं दिखलाया कि ये दोनों मान कैसे निकले। जान पडता है कि उस समय **अटकर** से **वर्गमूल** निकाला जाता था। **हिंदुओं** की **अंक** लिखने की रीति न जानने से ही वे लोग **अंकगणित** में कच्चे थे।

संस्कृत में **मूल जड** को कहते हैं। **मूल** यह संस्कृत के **मूल** (प्रतिष्ठायां या रोहणे) धातु से क प्रत्यय करने से बना है।

वर्गमूल और **घनमूल** निकालने में लोग एक से नव तक के **वर्ग** और **घन** कंठ रखते हैं। किसी **संस्कृत** के ग्रंथ में

वर्ग–अवर्गस्थानो ँ के और **घन–अघन** स्थानोँ के चिन्ह नहीँ लिखे गए हैँ पर **गुरुपरंपरा** से सब **संस्कृत** के गणक **वर्ग** और **घन** स्थान के लिये अंक के **ऊपर** खडी और **अवर्ग** और **अघनस्थानो** ँ के ऊपर **तिरछी रेखा** लगाते हैँ। जैसे ८८२०९ के **वर्ग मूल** जानने के लिये

$\overset{|}{८}\overset{-}{८}\overset{|}{२}\overset{-}{०}\overset{|}{९}$ ऐसी और १७२८ के **घन मूल** जानने के लिये $\overset{|}{१}\overset{-}{७}\overset{-}{२}\overset{|}{८}$ ऐसी रेखा लगाते हैँ।

श्रीधर ने अपनी **त्रिशतिका मे** ँ और **भास्कराचार्य** ने अपनी **लीलावती** के **क्षेत्रव्यवहार** मेँ **अवर्ग** (जिनका पूरा पूरा वर्गमूल नहीँ मिलता) के **आसन्नमूल** निकालने की विधि लिखी है। **कमलाकर** ने स. १६५८ ई. मेँ अपने **तत्त्वविवेक के स्पष्टाधिकार मे** ँ अच्छी तरह से सिद्ध किया है कि **अवर्ग** का **वर्गमूल** न पूरा न भिन्न है खाली उस का **मूल** एक **रेखा** से दिखा सकते हैँ पर उस रेखा को सही सही नाप नहीँ सकते।

पैथागोरास (*Pythagoras*) का अनुयायी **सिरेन** का रहनेवाला **थेओडोरास** (*Pythagorean Theodorus of Cyrene*) ने खाली दृढ संख्याओँ २, ३, ५, ७, ··· के **वर्गमूल** को सिद्ध किया है कि न यह पूरा और न भिन्न ही संख्या है।

वेद और **शुल्वसूत्रोँ** के देखने से मालूम होता है कि **आर्यभट** के हजारोँ वर्ष पहले से **हिंदू लोग** संख्या लिखने की यह प्रचलित रीति और **जोडने, घटाने, गुणने, भाग लेने, वर्ग, घन, वर्गमूल** और **घनमूल** की रीति जानते थे। मतविरोधी होने से **हिंदू वैदिक ब्राह्मणोँ** ने बहुत बातेँ **बौद्धोँ** को नहीँ बताई, शायद उन मेँ से एक **अंकगणित भी** रहा हो इसी लिये **अशोक के** समय के लेखोँ मेँ **हिंदुओँ** की अंक रीति से संख्याएँ नहीँ पाई जातीँ या उन लेखोँ के लिखनेवाले

गणक नहीँ थे; क्योँकि **गणक लोग** ही **अंकगणित** मेँ प्रधान थे। **लल्ल, वराह, ब्रह्मगुप्त,** ··· ने अपने अपने ग्रंथोँ मेँ **शून्य** का भी प्रयोग करते हैँ। इस लिये **नव** अंकोँ के साथ साथ **शून्य** भी पैदा हुआ।

ऐसे **अंक बनानेवाले** महर्षि की जितनी स्तुति की जाय सब थोड़ी है। धन्य यह हिंदुस्तान जहाँ ऐसे **महानुभाव** का जन्म हुआ।

भिन्न–अंक या संख्या।

भिन्न के **अंश** और **हर** को कैसे लिखना इस की चर्चा संस्कृत के **अंकगणितोँ** मेँ नहीँ है पर न्यास के देखने से और गुरुपरंपरा से **संस्कृत** के गणक **अंश के** नीचे **हर को** लिखते हैँ। वे लोग

$\frac{१}{२}$ को $\begin{matrix}१\\२\end{matrix}$ ऐसे और $२\frac{१}{३}$ का $\begin{matrix}२\\१\\३\end{matrix}$ ऐसे लिखते हैँ। $\frac{२}{३}$ को **दो तृतीयांश** कहेँगे। **भास्कर ने** लिखा है कि 'द्वौ त्र्यंशौ' याने एक के तृतीयांश को दो बेर लिया है। आज कल **स्कूल के** लड़के $\frac{२}{३}$ को **दो भागा तीन** या **दो बटा तीन** ऐसे बोलते हैँ।

अरब के अलनसवी ने भी **संस्कृत** ही की रीति से $२\frac{१}{३}$ इसे $\begin{matrix}२\\१\\३\end{matrix}$ ऐसा लिखा है।

संस्कृत के पुराने **ज्यौतिषी भिन्न** के **गणित** को बहुत कठिन समझते थे। पर **आर्यभट के** बहुत पहले से **भिन्न के जोडने, घटाने,** ··· का **हिंदुस्तान मेँ** प्रचार था इसी लिये **आर्यभट ने** अपने **आर्यभटीय के गणितपाद मेँ** भिन्न के **जोडने, घटाने, गुणने** और **भाग को** सहज समझ कर छोड़ दिया खाली भिन्न के **वर्ग** और **घन** को दिखलाया।

ब्रह्मगुप्त और **श्रीधर ने** सब की विधि लिखी है।

भिन्नों की समच्छेद विधि से, जो **ब्रह्मगुप्त** और **श्रीधर** ने दिखलाई है, साफ मालूम होता है कि इन लोगों को **लघुतमापवर्त्य** (*Least Common Multiple*) की विधि नहीं मालूम थी।

भास्कर ने अपवर्तित **हरों** से **भिन्नों** का **समच्छेद** करना लिखा पर इन्हें भी **लघुतमापवर्त्य** निकालने की क्रिया न मालूम हुई 'माणिक्याष्टकमिन्द्रनीलदशकं' इस **उदाहरण** के उत्तर में जो **अभिन्न** मान के लिये '**शेषै**र्हते शेषवधे पृथक्स्थैः' यह रीति लिखी है उस से निश्चय है कि **भास्कर** को **लघुतमापवर्त्य** निकालने की रीति नहीं मालूम थी।

कमलाकर ने सन्. १६५८ ई. में अपने **तत्त्वविवेक** के **महाप्रश्नाध्याय** में **लघुतमापवर्त्य** जानने के लिये रीति लिखी है (मेरा छपवाया सिद्धान्त **तत्त्वविवेक** देखो)।

यूरप में सब से पहले सन् १५२५ ई. में **टार्टाग्लिआ** (*Tartaglia*) ने **लघुतमापवर्त्य की** रीति लिखी है।

आर्यभट, ब्रह्मगुप्त··· **महत्तमापवर्त्तन** की विधि जानते थे। यह बात उन लोगों के **कुट्टाकार** गणित से साफ है।

वे लोग **भिन्नों** के **योग, अंतर, गुणन, भजन, वर्ग, वर्गमूल, घन** और **घनमूल** की विधि जानते थे। वही विधि आज कल भी सब **हिंदी के गणित** की पोथिओं में प्रचलित है।

किसी पूरी संख्या को भिन्न बनाने की जरूरत हो तो **श्रीधर, भास्कर,**··· ने लिखा है कि उस के नीचे एक का हर लगा दो (छेदनमच्छेदनस्य रूपं स्यात्, **त्रिशतिका,** पृ. ७)। जैसे **३ को** भिन्न बनाना हो तो $\frac{३}{१}$ ऐसा लिख दो।

ग्रीक का भिन्न।

पहले लिख आए हैं कि पुराने **ग्रीक** अपनी **वर्णमाला** के

अक्षरों में **स्वर** लगा लगा कर उन से संख्याओं को लिखते थे। इन के यहाँ **अंश** की एकाई पर एक स्वर लगा कर उस के आगे **हर** की एकाई पर दो **स्वर** लगा कर उस **हर** को दो बार लिख देते हैं। जैसे—

$\frac{१३}{४३}$ को वे लोग ιγ′ μγ″ μγ″ ऐसे लिखेंगे। जहाँ **अंश** का मान १=α′ रहता है वहाँ खाली **हर** की एकाई पर दो **स्वर** लगा कर उस **हर** को एक ही वार लिखते हैं जैसे $\frac{१}{२३}$ को वे लोग κγ″ ऐसा लिखेंगे। **संस्कृत** के गणितग्रंथों में भी यही रीति है। जहाँ **अंश** का मान १ रहता है वहाँ **अंश** का नाम नहीं लेते खाली **हर** का नाम लेने से समझ लिया जाता है कि अंश १ है। जैसे —

अर्ध से $\frac{१}{२}$, **त्र्यंश** या **त्रिभाग** से $\frac{१}{३}$, **पाद, अंघ्रि** या **चतुर्थ** से $\frac{१}{४}$, **पञ्चम** से $\frac{१}{५}$ और **षष्ठ** से $\frac{१}{६}$ समझ लेते हैं (भास्कर की **लीलावती** में भिन्नपरिकर्माष्टक देखो)।

ज्यौतिषवेदांग के **सोमाकर** भाष्य में '**पञ्चदश**' से $\frac{१}{१५}$ लिया है।

(मेरा छपवाया **ज्यौतिषवेदांग** का १८ पृ. देखो)।

बोधायन ने अपने **शुल्बसूत्र** में इस तरह बहुत जगह भिन्नों को दिखलाया है।

"षष्ठ्या षष्ठ्या युतं द्वाभ्यां" इस बचन से मालूम होता है कि **ज्यौतिषवेदांग** के समय अपवर्त्तन देने की विधि नहीं मालूम थी पर **ज्यौतिषवेदांग** के पहले ही से लोगों को **जोड़ना, घटाना, गुणना** और **भाग लेना** मालूम था क्योंकि **याजुष** और **आर्च** दोनों में **युक्त, सहित, ऊन, गुणन** और **भाग** के शब्द आते हैं।

पुराने **संस्कृत** के **ज्यौतिषी** कभी कभी '**अर्धपञ्चम**'

याने पाँचवें का आधा इस से $४\frac{१}{२}$ लेते हैं (**याजुष ज्यौतिष-वेदांग** का १४ वाँ श्लोक देखो)।

इसी तरह **अर्धचतुर्थ** $=३\frac{१}{२}$ । **अर्धषष्ठ** $=५\frac{१}{२}$ ।

भिन्न यह **संस्कृत** के **भिदिर्** (**विदारणे**) **धातु** से कर्म में 'क्त' प्रत्यय करने से बना है (भिद्यते इति भिन्नः याने हिस्सा किया गया)।

विततभिन्न (*Continued Fractions*) **संस्कृत** के **करणग्रंथों** में दूसरी सूरत में पाए जाते हैं पर आज कल जो रूप प्रचलित है उस की **जड लार्ड ब्रौंकर** (*Lord Brouncker*) हैं जिन का समय सन् (१६२०–१६८८) ई. है। ये **रायल सोसाइटी** (*Royl society*) के **सभापति** थे, **वालिस** (*Wallis*) के कहने से इन्हों ने इस **विततभिन्न** को निकाला। अंत में इस से क्या फल होगा यह **ब्रौंकर** को कुछ भी नहीं मालूम हुआ था।

उन्हों ने π का मान जानने के लिये याने १ व्यास में **परिधि** का मान जानने के लिये एक जगह

$$\pi = \cfrac{४}{१+\cfrac{१}{२+\cfrac{९}{२+\cfrac{२५}{२+\cfrac{४९}{१+\cdots}}}}}$$ ऐसा लिखा है

जिसे आज कल लोग जगह बचाने के लिये

$$\frac{४}{१+}\frac{१}{२+}\frac{९}{२+}\frac{२५}{२+}\frac{४९}{२+}\cdots$$

ऐसा लिखते हैं। सन् १६१३ ई. में **क्याटल्डी** (*Cataldi*) ने भी इस भिन्न का परिचय दिया था पर उन्हों ने इस का कोई विशेष नाम नहीं रक्खा था।

एजिप्ट का भिन्न।

एजिप्ट देश के एक **पुरोहित अहमेस** (*Ahmes*) की बनाई एक **पेंड के छाल पर** लिखी बहुत पुरानी एक **अंकगणित** की **पोथी** मिली है।

रिंड (*Rhind*) साहेब ने **ब्रिटिश अजायब** खाने के लिये इस का संग्रह किया था। पीछे से सन् १८७७ ई. में **इसेन्लोह्र** (*Eisenlohr*) ने पता लगाया कि यह **गणित** की **पोथी** है। इस के देखने से पता लगा है कि यह **ईशामसीह** के १७०० वर्ष पहले की है।

पोथी के देखने से मालूम होता है कि पढने के समय गुरु ने **अहमेस** को जो जो हिसाब करा दिए थे उन्हीं को **अहमेस ने** याद रखने के लिये अपनी **कापी** में लिख लिया है। इस में कुछ **अंकगणित, बीजगणित** और **रेखागणित** के **प्रश्न** और उत्तर लिखे हैं।

अंकगणित के हिसाबों की **क्रिया** देखने से जान पडता है कि उस समय **भिन्न** का **गणित** बहुत **कठिन** समझा जाता था। किसी भिन्न के लिये पहले ऐसी **क्रिया** करते थे जिस में वह ऐसे **भिन्नों** के योग के बराबर हो जाय जिन में अंश **१ रहें**। जैसे—

$$\frac{२}{९}=\frac{१}{६}+\frac{१}{१८} । \frac{२}{९५}=\frac{१}{६०}+\frac{१}{३८०}+\frac{१}{५७०} ।$$

उस **पोथी** में एक **सारणी** है जिस में $\frac{२}{२न+१}$ ऐसे भिन्नों के (जहाँ न का मान १ से ले कर ४९ तक है) मान **१ अंशवाले भिन्नों** के **योग** में लिखे हैं। उस **सारणी से** बहुत भिन्न **१ अंशवाले भिन्नों** के **योग** के बराबर हो जाते हैं। जैसे $\frac{५}{२१}$ इस में ५ = १ + २ + २ तो

$\frac{५}{२१} = \frac{१}{२१} + \frac{२}{२१} + \frac{२}{२१}$ । **सारणी से** $\frac{२}{२१} = \frac{१}{१४} + \frac{१}{४२}$ ।

इस लिये $\frac{५}{२१} = \frac{१}{२१} + \frac{१}{१४} + \frac{१}{४२} + \frac{१}{१४} + \frac{१}{४२}$

$= \frac{१}{२१} + \frac{२}{१४} + \frac{२}{४२} = \frac{१}{२१} + \frac{१}{७} + \frac{१}{२१} = \frac{१}{७} + \frac{२}{२१}$

$= \frac{१}{७} + \frac{१}{१४} + \frac{१}{४२}$ ।

इस **पोथी** में जो हिसाब हैं वे बहुतों के मत से **ईशामसीह** के **३४००** वर्ष पहले के हैं । इस लिये **एजिप्ट** के लोग आज से **पाँच हजार** वर्ष पहले से **गणित** जानते थे इस बात का पता लगता है । उस **पोथी** के ऊपर लिखा है कि **अँधेरी (कोठरी की) सब चीजों के जानने की राह** (*Directions for obtaining the knowledge of all dark things*) ।

यह **राह** की बोली संस्कृत के ग्रंथों में भी आती है । किसी **पदार्थ** का कुछ वर्णन कर के **आचार्य** लोग अंत में लिख देते हैं कि **'इति दिक्'** याने जानने के लिये यही (दिशा=मार्ग) राह है ।

इस **पोथी** से यह बात सिद्ध होती है कि **एजिप्ट** के लोग **गणित** की रीति निकालने में **बहुत कच्चे** थे ।

जौं $\frac{२}{९} = \frac{१}{य} + \frac{१}{र}$ तो $य = \frac{९र}{२र-९}$ । इस में जौं $र = ५$ तो $य = ४५$ ।

इस लिये $\frac{२}{९} = \frac{१}{५} + \frac{१}{४५}$, ... (१)

और ऊपर लिखे य के मान में जौं $र = ६$ तो $य = १८$ ।

इस लिये $\frac{२}{९} = \frac{१}{६} + \frac{१}{१८}$, ... (२)

और $\frac{२}{९} = \frac{१}{९} + \frac{१}{९}$, ... (३)

जौं **अहमेस** को बराबर के दो भिन्नों के मान न दर्कार हुए हों तो (३) इसे छोड सकते हैं पर **अहमेस** ने (१) छोड कर (२) को क्यों लिया इस का **कारण** नहीं मालूम होता है ।

$\frac{२}{२न+१}$ ऐसे **भिन्नों** को १ अंशवाले दो **भिन्नों** के बराबर करना तो कुछ कठिन नहीं क्योंकि $\frac{२}{२न+१} = \frac{१}{न+१} + \frac{१}{(२न+१)(न+१)}$ पर न जाने क्यों **अहमेस** ने कहीं कहीं कई **१ अंशवाले** भिन्नों के योग के बराबर और कहीं कहीं $\frac{१}{न+१} + \frac{१}{(२न+१)(न+१)}$ इन **भिन्नों** से **भिन्न भिन्नों** को दिखलाया है ।

जैसे ऊपर की युक्ति से

$\frac{२}{९९} = \frac{२}{२.४९+१} = \frac{१}{५०} + \frac{१}{५०.९९} = \frac{१}{५०} + \frac{१}{४९५०}$, पर **अहमेस** ने $\frac{२}{९९} + \frac{२}{११.९} = \frac{१}{११}.\frac{२}{९} = \frac{१}{११}\left(\frac{१}{६} + \frac{१}{१८}\right)$

$= \frac{१}{६६} + \frac{१}{१९८}$ ऐसा अपनी **सारणी** में लिखा है । इसी तरह **अहमेस** की **सारणी** में $\frac{२}{२९} = \frac{१}{२४} + \frac{१}{५८} + \frac{१}{१७४} + \frac{१}{२३२}$ ऐसा लिखा है ।

बीज के **एकवर्णसमीकरण** के भी कुछ प्रश्न, जिन के उत्तर **संस्कृत अंकगणित** के **इष्टकर्म** से हो जाते हैं, उत्तर सहित उस में हैं । जैसे वह कौन संख्या है जिस में उसी का सातवाँ भाग मिला देने से १९ होता है । इस के उत्तर निकालने में **अहमेस** ने $\frac{य}{७} + य = \frac{८य}{७} = १९ \therefore \frac{य}{७} = २ + \frac{१}{४} + \frac{१}{८}$ और

$य = १६ + \frac{१}{२} + \frac{१}{८}$ लिखा है । **अहमेस** ने **अव्यक्त** को **हौ** या **हीप** (*hau or heep*) कहा है ।

और और प्रश्नों के उत्तर जुदी जुदी रीति से निकाले गए हैं ।

एक जगह **अहमेस** ने **'अ'** संख्या को ९ गुना इस तरह से किया है, पहले **अ** को **दुगुना** किया फिर इस **दुगुने** को **दूना** किया फिर इस **चौगुने** को **दूना** कर इस में **अ को मिला दिया ।**

इस **पोथी** में दो भाग हैं । पहले में भिन्नों को $\frac{२}{२न+१}$

इस भिन्न के रूप में लाना फिर, $\frac{२}{२न+१}$ इन भिन्नों को **१ अंश-वाले** भिन्नों के योग के रूप में लाना इन की **क्रिया** दिखाई है। दूसरे भाग के आदि में **घटाने, भाग** और **इष्टकर्म** के प्रश्न और आगे कुछ **गुणोत्तर श्रेढी,** ... और अंत में दो **योगश्रेढी** के प्रश्न हैं। इस **पोथी** में यह भी लिखा है कि **ऋण**[१] को **ऋण** से गुण देने से **गुणनफल** धन होता है।

भिन्न को १ अंशवाले भिन्नों के योग में ले आना यह बात **बोधायन** के **शुल्वसूत्र** में भी पाई जाती है। (**बोधायन** के लिये **'वैदिकप्रकरण** देखो)। **एजिप्ट** और **ग्रीस** के लोगों का ध्यान किसी भिन्न को **१ अंशवाले** भिन्नों के **योग** के बराबर करने में था, इस से साफ मालूम होता है कि वे लोग नापने की **शलाका** (स्केल) रखते थे, उस का एक अंशवाले भिन्न के हर के बराबर हिस्सा कर एक हिस्सा ले लेते थे। पर जुदे जुदे **हरों** के हो जाने से **क्रिया** बढ़ जायगी इस का कुछ भी ध्यान न किए। वे लोग कभी कभी $\frac{२}{३}$ और $\frac{३}{४}$ को ज्यों का त्यों रख लेते थे और कभी कभी $\frac{२}{३}=\frac{१}{२}+\frac{१}{६}$ और $\frac{३}{४}=\frac{१}{२}+\frac{१}{४}$ ऐसा भी रखते थे।

दशमलव।

ब्याबिलोनिया के **ज्यौतिषी** लोग जैसे **साठ साठ हिस्से** को ले कर **हिसाब** करते थे उसी तरह **संस्कृत** के ज्यौतिषी भी **ग्रहों** के हिसाब में **साठ साठ हिस्से** को लेते हैं जिन्हें एक के नीचे दूसरे को लिखते चले जाते हैं। **लाघव** के लिये '६०' **हर** को नहीं लिखते खाली **अंश** ही को लिखते हैं। जैसे २ अं.

---

१ डाइओफांटस (*Diophantus*) को जो ८४ वर्ष का हो कर स. ३३० ई. के लग भग मरा और जो ग्रीस का प्रसिद्ध बीजगणितज्ञ था, **ऋण**-संख्या के गुणन का ज्ञान नहीं था। इस का वर्णन **बीजगणित** के भाग में किया जायगा।

१५ क. २१ वि. २४ प्रतिविकला को वे लोग $\begin{matrix}२\\१५\\२१\\२४\end{matrix}$ ऐसे लिखेंगे और इस से समझ लेंगे कि $\left.\begin{matrix}२\\१५\\२१\\२४\end{matrix}\right\} = २+\frac{१५}{६०}+\frac{२१}{६०^{२}}+\frac{२४}{६०^{३}}$।

हिंदुस्तान में पूरी संख्या के बाद दश दश हिस्से को ले कर **हिसाब** करने की चाल न थी। **अँगरेजी** राज में यहाँ पर यह रीति चली है। इस तरफ इस रीति के चलानेवाले **पं. मोहनलाल, पं. वंशीधर, पं. कुंजविहारीलाल,** ... हैं।

इन लोगों ने **आगरे** में **गवर्नमेंट** की आज्ञा से **तहसीली स्कूलों** में **लडकों** के पढने के लिये पहले पहल **अँगरेजी** रीति से **गणितप्रकाश, गणितनिदान, दशमलवदीपिका,** ... बनाए तभी से इस **युनाइटेड प्राविंश** में **दशमलवगणित** का प्रचार हुआ। उन्हीं लोगों ने **अँगरेजी** *'Decimal'* का अनुवाद **'दशमलव'** किया है।

पहले लिख आए हैं कि यद्यपि **पिकाक** (*Peacock*) साहब के मत से **नेपिअर** (*Napeir*) साहब दशमलव के निकालनेवाले हैं पर सच सच विचार किया जाय तो **रेगिओमानटनस** (*Regiomantanus*) इस के निकालनेवाले हैं क्योंकि सब से पहले इन्हीं ने **ग्रीक** और **हिंदुओं** की साठ साठ भाग करनेवाली रीति को छोड कर **त्रिकोणमिति** की **जीवा** निकालने के लिये **व्यासार्ध** (*Redius*) का १००००० विभाग किया। पर उन के ज्या, कोटिज्या, ... के मान पूरी पूरी संख्याओं में हैं; **भिन्न**संख्या छोड दी गई है।

सन् १६१६ ई. में **एडवर्ड राइट** (*Edward Wright*) ने जब **नेपिअर** (*Napeir*) की **मिरिफिसि लोगारिथमोरम क्यानोनिस डेस्क्रिप्टिओ** (*Mirifici Logarithmorum Canonis descriptio*) का

अँगरेजी अनुवाद छापा उस समय उस पोथी में लिखे हुए **दशमलव** को उन्हों ने शुद्ध किया था। पहले लिख चुके हैं कि स. १६१९ई. से स. १६३१ ई. तक की **अँगरेजी पोथिओं** में कहीं भी **दशमलव** की चर्चा नहीं है। **ब्रिगज़** (*Briggs*) ने नीचे **तिरछी रेखा** दे कर **दशमलव** को लिखा है।

जैसे २·५७ को उन्हों ने २ ५७ ऐसे लिखा है। सन् १६३१ ई. में **औट्रेड्** (*Oughtred*) ने ·५६ को ०|५६ ऐसा लिखा है। **स्टेविन** (*Stevin*) के एक विद्यार्थी **आलबर्ट गिरार्ड** (*Albert Girard*) ने स. १६२९ ई. में एक जगह **दशमलव** के **बिंदु** को लिखा है पर इस के बाद उस ने अपने **बीजगणित** में सब जगह **दशमलव** का व्यवहार किया है। **डि मार्गन** (*De Morgan*) साहब लिखते हैं कि सन् १७७५ ई. के बाद **दशमलव** की सब जगह जीत हुई; सब लोगों ने इस की इज्जत की।

जौं विचार कर देखो तो प्रचलित दशगुने स्थानों से जो संख्या लिखी जाती है उस की छोटी **बहिन दशमलव** संख्या है क्यों कि इस में सब अंक दशमांश स्थानों के रहते हैं इस लिये बड़ी **बहिन** ने **जबर्दस्ती** से **साठ साठ हिस्सेवाली विजातीय** संख्या को हटा कर अपनी **छोटी बहिन** को अपनी **बाईं ओर** बैठा लिया।

क्यांटर (*Cantor*) के मत से **पिटिस्कस** (*Pitiscus*) ने स. १६१८ ई. में सब से पहले अपनी **त्रिकोणमिति** की **सारणी** में **दशमलव** का व्यवहार किया।

गर्हार्ड्ट् (*Gerhardt*) का मत है कि **रडोल्फ** (*Rudolff*) को भी **दशमलवगणित** मालूम था। भाग लेने में जहाँ भाजक का मान दश का कोई घात है वहाँ **घातसंख्या** के बराबर एकाई से **बाईं ओर भाज्य** के अंकों को गिन कर उस जगह ',' **कामा** का निशान लगा देते थे।

सुना जाता है कि **स्टेविन** (*Stevin*) ने, जिस के **विद्यार्थी** ने **दशमलवबिंदु** का प्रचार किया, **दशमलव** के अंकों को एकाई, दहाई, ... के ऐसा दशवाँ (*Tenths*), **सौवाँ** (*Hundredths*), **हजारवाँ** (*Thousandths*), ... हिस्सों को क्रम से पहला, (*Primes*), दूसरा (*Sekondes*), तीसरा (*Terzes*),... इस नाम से प्रसिद्ध किया था। उस ने **४·६२८** को $४_{(०)}$ $६_{(१)}$ $२_{(२)}$ $८_{(३)}$ ऐसा लिखा है। **केप्लर** (*Kepler*) भी बिंदु की जगह कामा रखते थे।

बहुत लोग कहते हैं कि **स्टेविन्** (*Stevin*) की रीति को विना देखे **जूस्ट बर्गी** (*Joost Bürgi*) ने अपनी **जीवा की सारणी** में आज कल के ऐसा **दशमलव** को बिंदु दे कर लिखा है जैसे ०·३२ और ३·२।

इस **दशमलव** को पैदा हुए बहुत दिन नहीं हुए थे पर तो भी बहुत काम का समझ कर लोगों ने झट अपनी अपनी पोथिओं में **आदर** के साथ इस के बैठने के लिये **जगह** दी। **बापूदेवशास्त्री** जी के समय से इस तरफ **संस्कृत** में भी **दशमलव** का व्यवहार होने लगा है।

चिह्न।

संस्कृत अंकगणितग्रंथों में **जोडने, घटाने, गुणने** और **भाग** के कोई चिह्न नहीं मिलते। पोथिओं में उस के नाम के आगे उस संख्या को लिख देते हैं। जैसे **वियोज्य** १५२०, **वियोजक** ५२०। **गुण्य** १३५, **गुणक** १२। **भाज्य** १६२०, **भाजक** १२।......

बीजगणित में **ऋण**संख्या दिखलाने के लिये **भास्कर** ने लिखा है कि उसके शिर के ऊपर एक **बिंदु** रख दो। जैसे

–२ = २̇। और **मूल** के लिये **करणी** का **'क'** लिखा है। जैसे √३ = क३।

और **बीजगणित** के चिह्न **बीजगणितभाग** में लिखे जायँगे।

ग्रीक डाइओफांटस (*Diophantus*) ने जो स. ३०३ ई. के लगभग मरे, **ऋण** के लिये ↑, बराबर के लिये ८ और अव्यक्तराशि के लिये ऽ ये चिह्न मान लिए थे। और चिह्न उन की **पोथी** में नहीं मिलते।

अहमेस ने अपनी पोथी में आगे चलते हुए आदमी की दोनों टाँगों की जैसी सूरत होती है उसे **धन** की जगह और पीछे की ओर चलने में उन टाँगों की जैसी सूरत होती है उसे **ऋण** की जगह रक्खा है। उन्हों ने **ऋण** के लिये कहीं कहीं **तीन** समानांतर तीर के ⇛ ऐसे निशान बना दिए हैं और बराबर के लिये ∠ ऐसा चिह्न बनाया है।

विड्म्यान् (*John Widmann*) के **अंकगणित** में जो स. १४८९ ई. में **लिप्ज़िग्** (*Leipzig*) में छपा है, **धन** और **ऋण** के चिह्न क्रम से + और – पाए जाते हैं। उस समय धन चिह्न में **खडी रेखा** तिरछी रेखा से कुछ छोटी रहती थी।

जर्मनी के **स्टिफेल्** (*Stifel*) ने **अंकगणित** पर एक **अरिथमेटिका इंटेग्रा** (*Arithmetica Integra*) नाम की पोथी लिखी है जो कि सन् १५४४ ई. में **न्यूरेम्बर्ग** (*Nuremberg*) में छपी है, उस में भी **धन** और **ऋण** के चिह्न वैसे ही हैं जैसे कि **विड्म्यान्** (*Widmann*) की पोथी में हैं। पर पीछे से **क्साइलेंडर** (*Xylander*) ने स. १५७५ ई. में धन चिह्न की **खडी रेखा तिरछी रेखा** से बहुत **बडी** **खींची** है, ┼ इस तरह से।

बहुत लोगों के विचार से **स्टिफेल** (*Stifel*) ही पहले पहल इन दोनों चिह्नों के बनानेवाले हैं। बहुत लोगों का अनुमान है कि ये दोनों चिह्न किसी शब्द के पहले अक्षर की बिगडी सूरत नहीं हैं; ये दोनों एक तरह के चिह्न बना लिए गए हैं।

बहुत लोग + इस को एक तरह की हाथ की सूरत बताते हैं पर मेरी समझ में यह '*additorum*' के पहले **अक्षर** *a* की बिगडी सूरत और – यह ऋणचिह्न '*Subtractorum*' के पहले **अक्षर** ऽ की बिगडी सूरत है जैसे '*radix*' के पहले अक्षर *r* की बिगडी सूरत मूल का चिह्न √ यह है जिसे पहले पहल **स्टिफेल** (*Stifel*) ने लिखा है। बहुतों का मत है कि ये दोनों '*Plus*' और '*Minus*' के पहले **अक्षर** '*p*' और '*m*' के उस समय के रूप की बिगडी सूरत हैं।

प्रोफेसर डि मार्गन (*De Morgan*) का मत है कि **हिंदुओं** के ऋणचिह्न '॰' की — यह एक बडी सूरत है। फिर पीछे से इस का उलटा याने धनचिह्न दिखाने के लिये इस — ऋणचिह्न को **खडी रेखा** से काट कर + ऐसा बनाया गया। **डि मार्गन** ने इस बात को स. १८४७ ई. में अपनी गणितसंबंधि-पोथी के **१९ वें** पृ. में लिखी है। यह वही **डि मार्गन** साहब हैं जिन्हों ने **दिल्ली** के रहनेवाले **लालारामचंद्र** की **म्याक्ज़िमा** और **मिनिमा** (*Maxima and Minima*) को **यूरप** में छपवाया था। **यूरप** में **मर्दुमशुमारी** की भी चाल इन्हीं ने निकाली थी।

बहुतों का मत है कि दो आदमिओं के बीच में एक आदमी खडा हो कर एक एक हाथ से दोनों को अपने पास मिलने के लिये जिस तरह से बुलाता है उसी की + यह एक तरह की सूरत है, **खडी रेखा** **शिर** और **पीठ** के बीच की बिगडी सूरत और

तिरछी रेखा दोनों **हाथों** की बिगडी सूरत है।

बहुत लोग कहते हैं कि **जर्मन** लोगों (*Germans*) ने इन धन-ऋण चिह्नों को सब से पहले बनाया है।

जो हो पर पहले पहल इन दोनों चिह्नों का व्यवहार **बनिओं** में होता था। **वैटा** (*Vieta*) के समय से सब लोग गणित के सुभीते के लिये खुशी से इन का व्यवहार करने लगे।

राबर्ट रेकार्ड (*Robert Recorde*) ने स. १५४० ई. में, यह विचार कर कि दो **समानांतर** रेखाओं ही में सब से ज्यादा बराबरी है, बराबर का = यह चिह्न बनाया है। **राबर्ट रिकार्ड** का **बीजगणित** (*The Whetstone of Witte*) जो सन् १५५७ ई. में बना है, **अँगरेजी** के सब **बीजगणितों** में पहला है।

जान हेनरिक् राःन (*Johann Heinrich Rohn*) ने सन् १६५९ ई. में भाग के लिये ÷ इस चिह्न को बनाया जिसे **इंगल्यांड** में **जान पेल** (*John Pell*) ने स. १६६८ ई. में प्रचार किया।

वैटा (*Vieta*) ने जो **बीज** में **वर्णमाला** के बडे अक्षरों को लिया था, वहाँ पर जगह बचाने के लिये, **हारिओट** (*Harriot*) ने छोटे अक्षरों को लिया और बडे और छोटे के लिये ⅂ और ∠ ये चिह्न बनाए। **हारिओट** (*Harriot*) के मरने के **दश वर्ष** बाद उस का **बीज** *Artis Analyticae praxis*) सन् १६३१ ई. में छापा गया।

विलियम औट्रेड (*William Oughtred*) ने सन् (१५७४–१६६०) ई. में गुणन का चिह्न × और अनुपात दिखाने का चिह्न :: ऐसा बनाया। उन्हीं ने निष्पत्ति के लिये · ऐसा चिह्न माना था जिसे पीछे से **अठारहवीं सदी** में

क्रिस्चिअन वोल्फ (*Christion Wolf*) ने गुणन के लिये और : इसे निष्पत्ति के लिये मान लिया। बहुत लोग यह कहते हैं कि **औट्रेड** (*Oughtred*) और **हारिओट** (*Horriot*) दोनों ने सन् १६३१ ई. में × इस गुणन और :: इस निष्पत्ति चिह्न को व्यवहार में लाए।

पासिओलि (*Pacioli*) और **टार्टाग्लिआ** (*Tartaglia*) दोनों ने — इस ऋण चिह्न को भाग, **निष्पत्ति** और **अनुपात** में व्यवहार किया।

बहुतों का मत है कि **डिकार्टेस** (*Descartes*) ने सन् १६३७ ई. में गुणन के लिये · इस बिंदु को ले लिया है।

लेब्निज़् (*Leibnitz*) ने सन् १६८६ ई. में गुणन के लिये ⌒ इस चिह्न को और भाग के लिये इस के उलटे ◡ इस को रक्खा है।

कभी कभी अरब के लोग **अंश** और **हर** के बीच एक तिरछी रेखा रख देते थे जैसे ९–३ = $\frac{९}{३}$। कभी कभी वे लोग $\frac{९}{३}$ को ९/३ इस तरह से भी लिखते थे।

क्लैरौट (*Clairaut*) ने सन १७६० ई. में एक पोथी छापी है उस में भी निष्पत्ति के लिये : यह चिह्न है।

जोडने ही की एक विशेष क्रिया को गुणन कहते हैं इस लिये जोडने ही के + इस चिह्न का एक विशेष रूप × यह गुणन चिह्न माना गया और घटाने ही की एक विशेष क्रिया भाग है इस लिये घटाने ही के — इस चिह्न में नीचे ऊपर एक एक बिंदु दे कर उस का विशेष रूप ÷ यह भागचिह्न माना गया, ऐसा समझ पडता है।

बहुत लोग कहते हैं पहले पहल **पेल** (*Pell*) ने इस चिह्न का सन् १६३० ई. में प्रचार किया। बहुतों का मत है कि पहले

भाग का चिह्न ∸ ऐसा था इसी की बिगडी सूरत आज कल का ÷ यह भाग चिह्न हो गया।

रिकार्ड ने बराबर का = यह चिह्न निकाला और **क्साइलेंडर** (*Xylander*) ने भी सन् १५७५ ई. में इसी का व्यवहार किया पर **न्यूटन** (*Newton*) तक इस का प्रचार बहुत कम था। **न्यूटन** ने सन् १६८० ई. में बराबर के लिये ∝ यह या इस का उलटा ∞ यह लिया है। यह *aequalis* के पहले **अक्षर** की बिगडी सूरत मालूम होती है।

वैटा (*Vieta*) ने इस = बराबर के चिह्न को अंतर के लिये रक्खा है। अ = क इस का अ ∽ क यह अर्थ किया है याने बडी संख्या जो हो उस में छोटी घटाई गई है।

औट्रेड (*Oughtred*) ने अनुपात चिह्न को बनाया सही पर व्यवहार में इस का सब जगह प्रचार **वालिस** (*Wallis*) ने सन् १६८६ ई. में किया।

बराबर के = इस चिह्न से दूसरा अनुपात के चिह्न के बनाने की कुछ जरूरत न थी। क्योंकि **अः क = खः ग** इस का वही अर्थ होगा जो कि **अः क :: खः ग** का है।

औट्रेड (*Oughtred*) ने पहले बडे और छोटे के लिये ⊐ और ⊐ ये चिह्न बनाए थे पीछे से **हरिओट** (*Harriot*) ने इन्हीं की कुछ सूरत बदल कर > और < ऐसा कर दिया जो कि **बारो** (*Barrow*) के बाद सब जगह जारी हुए हैं।

≠ (नहीं बराबर), ≯ (नहीं बडा) और ≮ (नहीं छोटा) ये चिह्न बहुत थोडे दिनों से जारी हुए हैं।

सन् १५९१ ई. में **वैटा** *Vieta* ने (*Vinculum*) का और सन् १६२९ ई. में **गिरार्ड** (*Girard*) ने **कोष्ठ** (*Brakets*) का प्रचार किया। **जान वालिस** (*John Wallis*) ने जो सन् १६४९ में आक्सफोर्ड में **रेखागणित** के प्रोफेसर हुए थे **अनंत** का याने १/० इस का ∞ यह चिह्न बनाया। मुसलमानी राज के समय से **हिंदुस्तान** में आना, छटाँक, सेर, तोला, मासा, ... के चिह्न बने हैं जो कि सब जगह प्रसिद्ध हैं। बाकी **बीजगणित** के चिह्नों का वर्णन **बीजगणित के भाग** में किया जायगा।

दृढ संख्या।

आर्यभट ने अपने **आर्यभटीय** के **कुट्टाकार** में **दृढ-भाज्य-हार** की कुछ चर्चा नहीं की।

इन के **शिष्य प्रभाकर,** ... की **अंकगणित** की पोथिआँ अभी तक नहीं मिलीं। **आर्यभटीय** के टीकाकार **परमेश्वर** के वचन से (गणकतरङ्गिणी देखो) **आर्यभट** के एक शिष्य **लल्ल** भी हैं जिन्हें आदर के लिये लोग **लल्लाचार्य** कहते हैं। **भास्कराचार्य** इन के **गोलपृष्ठफल** के खंडन में अपने **गोलाध्याय** में लिखते हैं कि "तर्हि तेन **लल्लेन** स्वगणिते **परिधिघ्नं** कुतः कृतम्" इस से साफ है कि **लल्ल** का **अंकगणित** भी है। मेरे **गुरु पं. श्री ६ देवकृष्णमिश्र** जी ने पढने के समय मुझ से कई वार कहा था कि **बनारस-संस्कृतकालेज** के **पुस्तकालय** में लल्ल का **व्यक्तगणित (अंकगणित)** था पर न जानें क्या हुआ। वे मुझ से यह भी कहते थे कि उसी पोथी में मैंने **"अङ्कानां वामतो गतिः"** इस को देखा था।

जो कुछ हो पर **लल्ल** के **अंकगणित** होने में कुछ संशय नहीं। **लल्ल** ने **महत्तमापवर्त्तन** से भाज्य-हार में भाग दे कर नए भाज्य-हारों का क्या नाम रक्खा इस का पता उन की पोथी के न मिलने से नहीं लग सकता।

ब्रह्मगुप्त ने अपने **ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त** के **कुट्टकाध्याय** में **महत्तमापवर्त्तन** से **भाज्य-हार** में भाग दे कर उन दोनों का नाम **निश्छेद** भाज्य-हर रक्खा है।

उन के बाद **भट्टवलभद्र, श्रीपति, श्रीधर, पद्मनाभ,** ... के पुराने कोई **अंकगणित** के ग्रंथ नहीं मिलते।

यह तो निश्चय है कि **श्रीपति** का **अंकगणित** है (गणकतरङ्गिणी देखो) पर जैसे उन का **'सिद्धान्तशेखर** नहीं मिलता उसी तरह उन का **अंकगणित** भी दुर्लभ हो गया।

श्रीधर की बडी **पाटी** नहीं मिलती, **छोटी पाटी त्रिशतिका (पाटीसार)** में **कुट्टक**प्रकरण ही नहीं है।

भास्कर ने अपनी **पाटी लीलावती** के **कुट्टकव्यवहार** में **महत्तमापवर्त्तन** से भाग दे कर **भाज्य-हार** का नाम **दृढ** भाज्य-हार रक्खा है।

ब्रह्मगुप्त का **'निश्छेद'** ही **भास्कर** का दृढ है। **भास्कर** के बाद के ज्यौतिषिओं ने **'दृढ'** का व्यवहार किया है। **गणेश** ने सन् १५२० ई. में अपने **ग्रहलाघव** के आदि ही में लिखा है कि **'दृढगुणहारलसत्'**।

इस तरह से पुराने **संस्कृत** के **गणित**-ग्रंथों में खाली **दृढ** भाज्य-हार का पता लगता है। पर **दृढ** संख्या किसे कहते हैं इस की चर्चा संस्कृत में केवल **नारायण पंडित** ने अपनी **गणितकौमुदी** में की है, उन्हों ने दृढ को अच्छेद्य लिखा है। पीछे से **जयपुर** राजा के **जगन्नाथपंडित** (गणकतरङ्गिणी देखो) ने अपने **रेखागणित के ७-९** अध्यायों में **दृढ** का बहुत सिद्धान्त लिखा है। यह **अरबी** रेखागणित का संस्कृत में अनुवाद है। **गवर्नमेंट** की ओर से **बंबे संस्कृत सीरिज़्** में छप भी गया है। **जगन्नाथ** पंडित ने सन् १७१८ ई. में इस अनुवाद को पूरा किया है।

युक्लेद (*Euclid*) **ईशामसीह** के ३०० वर्ष पहले हुए हैं। इन्हों ने अपने गुरुओं के और अपने प्रकारों का संग्रह कर इस **रेखागणित** को बनाया है इस लिये अब इस बात का पता लगाना बहुत कठिन है कि **दृढ**संख्याओं के सिद्धान्त **युक्लेद** के या उन के गुरुओं के निकाले हैं।

इस बात का पता लगता है कि **दृढसंख्याओं** के सिद्धान्तों को छोड कर बाकी सब **पैथागोरास** (*Pythagoras*) के शिष्य परंपराओं के निकाले हुए हैं।

युक्लेद के पीछे **दो** नामी आदमी ऐसे हुए जो कि **अंकगणित** की ओर विशेष ध्यान दिए हैं।

एराटोस्थेनेस (*Eratosthenes*) ने **ईशामसीह** के २७५-१९४ वर्ष पहले दृढसंख्याओं के जानने की रीति लिखी है।

उस ने लिखा है कि जौं यह जानना हो कि १०० के भीतर कितनी **दृढसंख्या** हैं तो ३, ५, ७, ९, ..., ९९ ऐसे १०० के भीतर **विषमसंख्याओं** को लिख डालो। फिर जितनी तीसरी तीसरी संख्याएँ ३ से अपवर्त्तित हों सब पर चिह्न लगा दो, फिर **पाँच** से **पाँचवीं पाँचवीं** जितनी अपवर्त्तित हों उन पर चिह्न लगा दो। इसी तरह ७, ११, ... से विना चिह्नवाली संख्याओं से आगे जो जो संख्याएँ **अपवर्त्तित** हों उन पर चिह्न लगाते जाओ। इस तरह करने पर जो विना चिह्न की रह जायँ वे १०० के भीतर में **दृढसंख्याएँ हैं**।

जैसे **हिंदुओं** में **'तीन तिकट महाविकट' 'चार चंद्र काला'**... ऐसे संख्याओं पर से सगुन विचारते हैं उसी तरह **अरिस्टोटल** (*Aristotel* = **अरस्तू**) और उन के अनुयायी भी संख्याओं पर से सगुन विचारते थे। इस बात का पता **प्लेटो**

(*Plato*) के ग्रंथ से लगता है।

युक्लेद (*Euclid*) को १+२+४+८+... इस गुणोत्तर श्रेढी के योग करने की रीति मालूम थी। **युक्लेद** ने यह भी दिखलाया है कि ऊपर की **गुणोत्तर** श्रेढी में जिस पद तक का योग दृढसंख्या हो तो उस योग को श्रेढी की अंतवाली संख्या से गुण देने से **निधि**(*Perfect*) संख्या होती है।

(जो संख्या अपने निःशेष करनेवाले भाजकों के योग के बराबर हो उस का नाम **जगन्नाथ पंडित** ने अपने **रेखागणित** के **७वें अध्याय** की **परिभाषा** में **'निधि'** रक्खा है। जैसे ६ को निःशेष करनेवाले भाजक १, २, ३, हैं और

१+२+३=६, इस लिये ६ को निधि कहेंगे।)

जैसे १+२=३ यह दृढ है इस लिये इसे **अंतवाली** संख्या २ से गुण देने से ६ **निधि**संख्या हुई। इसी तरह

१+२+४=७ यह दृढ है इस लिये इसे श्रेढी की अंत्य संख्या ४ से गुण देने से २८ **निधि**संख्या हुई।

इस तरह से आज तक ६, २८, ४९६, ८१२८, ३३५५०३३६, ८५८९८६९०५६, १३७४३८६९१३२८, २३०५८४३००८१३९९५२१२८ इतनी **निधि**संख्याएँ जानी गई हैं। आगे श्रेढी के पदों का योग दृढ है या नहीं इस के पता लगाने में बडी मेहनत है इस लिये लोगों ने आगे नहीं पता लगाया। मैं ने अपने **'वास्तवविचित्रप्रश्न'** में इस **निधि**संख्या के जानने की रीति लिखी है जिस की उपपत्ति बीजगणित से होती है।

युक्लेद को $१+\frac{१}{४}+\frac{१}{१६}+\frac{१}{६४}+\cdots$ इस अनंत श्रेढी का योग $\frac{४}{३}$ मालूम था। उस ने **परवलय** (*Parabola*) के **क्षेत्रफल** के लिये इस श्रेढी का योग निकाला था (मेरा चलराशिकलन देखो)।

पैथागोरास (*Pythagoras*) के स्कूल के पंडितों ने **यमल, युग्म, युग** या **जोडुआँ** दो संख्याओं को भी निकाला है। **पहली संख्या** के निःशेष करनेवाले भाजकों का योग **दूसरी संख्या** और **दूसरी संख्या** के निःशेष करनेवाले भाजकों का योग **पहली संख्या** हो तो ऐसी दो संख्याओं को **युगसंख्या** कहते हैं।

जैसे— २२० के निःशेष करनेवाले भाजकों का

योग=१+२+४+५+१०+११+२०+२२+४४+५५+११०=२८४=**दूसरी संख्या** और २८४ के निःशेष करनेवाले भाजकों का

योग=१+२+४+७१+१४२=२२०=**पहली संख्या**।

इस लिये २२० और २८४ ये दोनों युगसंख्या हुईं।

खलीफा अलमनून जिस समय **बगदाद** में राज करते थे उस समय **मूसा बिन सकीर** नाम के एक मौलवी थे। ये विद्या के बडे चाही थे। उन्हें तीन लडके हुए। ये तीनों अपने बाप की शिक्षा से बहुत भाषा के पंडित हुए। इन लोगों के बनाए बहुत ग्रंथ हैं। सुनने में आता है कि एक भाई **गणित** की पोथिओं की खोज करने के लिये **ग्रीस** में गया था। उस ने लौटती बेरा **तबित बिन कोर्रा** से, जो कि सन् (८३६-९०१) ई. में **मेसोपोटिमिआ** (*Mesopotamia*) के **हर्रन** (*Harran*) स्थान में पैदा हुए थे, भेंट की थी। उस ने **खलीफा** से तारीफ कर के **तबित** को **बगदाद** में बुलवाया। **खलीफा** ने बडी इज्जत के साथ उन्हें अपने दर्बार का प्रधान **ज्यौतिषी** बनाया। ये खाली गणितही के पंडित न थे बल्कि **ग्रीक, अरबी, साइरिअन** (*Syrian*) भाषा के भी बडे पंडित थे। **अरब**-वालों में यही एक ऐसे आदमी जान पडते हैं जिन के मन में

बहुत नई बातेँ पैदा हुईँ। ये **पाइथागोरास** (*Pythagoras*) के स्कूल के पंडितोँ के बहुत दृढसंख्याओँ के सिद्धान्त को भी जानते थे इस मेँ कुछ भी संशय नहीँ क्योँकि **युगसंख्या** की **परिभाषा** से ये अच्छी तरह वाकिफ थे तब तो इन के जानने की रीति निकाली।

उन की रीति यह है—

जौँ **प** $=३\cdot२^{न}-१$, **फ** $=३\cdot२^{न-१}-१$, **ब** $=९\cdot२^{२न-१}-१$, (न पूरी और **धनसंख्या** है) ये **दृढ** होँ तो

अ $=२^{न}\cdot प\cdot फ$, **क** $=२^{न}\cdot ब$ ये दोनोँ युगसंख्या होँगी।

जैसे जौँ न $=२$ तो प $=११$, फ $=५$, ब $=७१$, ये सब **दृढ** हैँ इस लिये

अ $=२२०$ और क $=२८४$ ये दोनोँ **युगसंख्या** हुईँ।

इस तरह आज तक २२०, २८४। १७२९६, १८४१६। ९३६३५८३, ९४३७०५६। ये तीन **युगसंख्या** जानी गई हैँ।

ताबित ने एक दिए हुए **कोण** के सम **त्रिभाग** करने की भी रीति लिखी है।

संस्कृत के किसी गणित के ग्रंथोँ मेँ **युगसंख्या** की चर्चा नहीँ है।

दूसरे देश के लोगोँ ने **दृढसंख्या** के ऊपर बहुत कुछ सिद्धान्त लिखे हैँ जिन का संस्कृत मेँ किया हुआ मेरा अनुवाद भी है (**चौखंभा-संस्कृतसीरिज़ मेँ छपा करणप्रकाश** देखो)।

दृढसंख्या अनंत हैँ इस बात को **युक्लेद** (*Euclid*) ने अपने **रेखागणित** के **नवे**ँ अध्याय मेँ सिद्ध किया है।

इस **दृढ** के जानने के लिये बहुतोँ ने अनेक प्रकार बनाए पर सब आगे जा कर अशुद्ध हो जाते हैँ।

एक ने लिखा है कि $२^{न}-१$ यह **दृढसंख्या** है।

इस मेँ जब न $=४$ तो $२^{न}-१=१५$ यह दृढ नहीँ है।

सन् १६४० ई. मेँ **फरम्याट** (*Fermat*) ने अपनी एक चीठी मेँ एक बहुत बढिआँ **दृढसंख्या** के ऊपर सिद्धान्त लिखा है जिसे आज कल लोग **फरम्याट** का सिद्धान्त (*Fermat's theorem*) कहते हैँ।

जौँ **प दृढसंख्या** हो और **अ** और **प** आपस मेँ दृढ होँ तो $अ^{प-१}-१$, यह **प** से निःशेष होगा याने **प** के भाग देने से कुछ भी बाकी न बचेगा यही **फरम्याट** का सिद्धान्त है (करण-प्रकाश देखो)।

फरम्याट ने **दृढसंख्या** जानने के लिये भी एक $२^{२^{न}}+१$ यह प्रकार निकाला।

फरम्याट अपने दोनोँ प्रकारोँ की उपपत्ति न दिखा सका। पहले प्रकार की उपपत्ति पीछे से **यूलर** (*Euler*) ने की है (**करण-प्रकाश** देखो)।

फरम्याट को मरने तक पूरा विश्वास था कि मैँ ने **दृढ**-संख्या जानने का $२^{२^{न}}+१$ यह ठीक प्रकार निकाला है पर मैँ इस की उपपत्ति न कर सका।

एक **अमेरिकन लडके** ने जिस का नाम **ज़ेरा कोल्बर्न** (*Zerah Colburn*) था, इस बात का पता लगाया कि जब **फरम्याट** के प्रकार मेँ **न** $=५$ तो $२^{२^{न}}+१=२^{२^{५}}+१$ $=२^{३२}+१=४२९४९६७२९७=६४१\times६७०००४१७$। ऐसा होता है इस लिये इस प्रकार से सब **दृढांक** ही नहीँ पैदा होँगे।

लडके के मन मेँ ६४१ कैसे आया इस बात को वह नहीँ

बता सका। फिर पीछे से **यूलर** (*Euler*) ने इसी उदाहरण को दिखा कर साबित कर दिया कि **फरम्याट** का प्रकार ठीक नहीँ।

फरम्याट को आज कल के प्रचलित **दृढांक** सिद्धांतोँ का **मूलपुरुष** कहना चाहिए पर न जानेँ क्योँ **फरम्याट** अपने प्रकारोँ को तो लोगोँ मेँ मशहूर कर देता था पर उपपत्ति को छिपा रखता जिस से और **गणकोँ** का **नाहक** उपपत्ति सोचने मेँ वक्त खराब होता था। यही चाल **संस्कृत** के **गणकोँ** मेँ भी थी पर मैँने अब इस चाल को उठा दी।

एक **फरासीसी ब्याकेट ड मेज़िरियाक्** (*Bachet de Méziriac*) ने सन् १६१२ ई. मेँ **डाइओफांटस** (*Diophantus*) के गणित के ग्रंथ को छपवाया था। **फरम्याट** को उस की एक प्रति मिली थी, उसी के पन्नोँ के **हाशिए** पर उस ने अपने प्रकारोँ को **टिप्पणी** की तरह लिख डाला था। **फरम्याट** के मरने के बाद उस के **लडके** ने अपने बाप की **टिप्पणी** के साथ **डाइओफांटस** के उस **ग्रंथ** को फिर से छपवा दिया। **फरम्याट** के और प्रकारोँ को भी उस के लडके ने **ओप्रा व्यारिआ** (*Opera Varia*) और **वालिस** के **कमर्शियम् एपिस्टोलिकम्** (*Commercium epistolicum*) मेँ सन् १६५८ ई. मेँ छपवा दिया।

फरम्याट की **टिप्पणी** के कुछ प्रश्न —

(१) सिद्ध करो कि $य^न + र^न = ल^न$, इस मेँ, जौँ $न > २$ तो समीकरण असंभव है।

इस पर **फरम्याट** ने टिप्पणी लिखी है कि मैँने उपपत्ति से सिद्ध किया है पर **हाशिए** पर जगह कम है इस लिये उपपत्ति को नहीँ लिखा।

यही प्रश्न पीछे से गणकोँ के बीच मेँ **'इनामी सवाल'** हो गया याने जो इस का उत्तर करें वह **इनाम** पावे।

यूलर (*Euler*), **ल्यागरेंज** (*Lagrange*), **डिरिक्लेट** (*Dirichlet*) और **कुम्मर** (*Kummer*) ये लोग इस के पीछे बडे हैरान हुए थे। **यूलर** ने जब न = ३ तब इसे **असंभव** सिद्ध किया। **ल्यागरेंज** ने जब न = ४ तब असंभव सिद्ध किया। **कुम्मर** ने कुछ **न** मानोँ को छोड कर और सब मानोँ मेँ **असंभवता** दिखाई है पर **कुम्मर** की उपपत्ति मेँ बहुत संशय है इस लिये अभी तक इस प्रश्न का उत्तर बाकी है।

(२) ४न+१ यह जौँ दृढ अंक हो तो यह एक ही **जात्यत्रिभुज** मेँ **कर्ण**, इस का **वर्ग** दो जात्यत्रिभुजोँ मेँ **कर्ण**, इस का **घन** तीन जात्यत्रिभुजोँ मेँ **कर्ण**, और इसी तरह इस का **न** घात **न** जात्यत्रिभुजोँ मेँ **कर्ण** होगा।

जैसे— जौँ न = १ तो ४न+१ = ५ यह दृढ हुआ तो

$४^२ + ३^२ = ५^२$, इस लिये जिस जात्य का **भु = ३, को = ४** उसी मेँ ५ यह **कर्ण** होगा। दूसरा कोई ऐसा जात्य नहीँ हो सकता जिस के **अकरणीगत** भुज-कोटि मेँ यह ५ कर्ण हो।

५ का वर्ग २५ यह—

$२५^२ = १५^२ + २०^२ = ७^२ + २४^२$ इस लिये **दो जात्योँ** मेँ **कर्ण** होता है। इसी तरह $५^३ = १२५$ यह—

$१२५^२ = ७५^२ + १००^२ = ३५^२ + १२०^२$
$= ४४^२ + ११७^२$, इस लिये **तीन जात्योँ मेँ कर्ण** होता है।

(३) जो **दृढसंख्या** ४न+१ इस चाल की हैँ वे कोई निश्चित दो ही संख्याओँ के **वर्गयोग** के बराबर होती हैँ।

जैसे—

जौँ न = १ तो ४न+१ = ५ यह १ और २ के वर्गयोग के

बराबर है। इन दोनोँ को छोड कर ऐसी कोई और दो पूरी संख्या नहीँ जिन के **वर्गों** का **योग** ५ के बराबर हो। इस की उपपत्ति **यूलर** (*Euler*) ने की है। वह इस तरह से है—

१। **पा** $= अ\cdot य^{न} + क_१ \cdot य^{न-१} + क\cdot_२ य^{न-२} + \cdots + क_न$ ऐसा **बीज** का **बहुपद** हो और **म** एक **दृढसंख्या** हो तो य के स्थान मेँ $-\frac{म}{२}, १-\frac{म}{२}, \cdots, ०, १, २, \cdots, \frac{म}{२}$, इन के भीतर **न** से अधिक संख्याएँ नहीँ हो सकतीँ, जिन के उत्थापन से जो **बहुपद** का मान हो वह म के भाग देने से निःशेष हो।

मानो कि जौँ य = च तो **बहुपद म** से निःशेष होता है। लब्धि = **आ** मान लो तो आ·म

$= अ\cdot च^{न} + क_१ \cdot च^{न-१} + क_२ \cdot च^{न-२} + \cdots + क_न$, इस को **बहुपद** मेँ घटा देने से

$पा - आ\cdot म = अ(य^{न} - च^{न}) + क_१(य^{न-१} - च^{न-१}) + \cdots$

$= (य - च) पा_१$,

(जहाँ **पा**$_१$ के मान मेँ य का सब से बडा घात न−१ है)

इस लिये $पा = (य-च) पा_१ + आ\cdot म$ ऐसा समीकरण का रूप होगा। इस मेँ मानो कि जौँ य = ज तो फिर **पा म** से निःशेष होता है इस लिये

$(ज-च) पा_१ + आ\cdot म$ यह **म** से निःशेष होगा पर आ·म **म** से निःशेष होता है और ज−च यह **म** से छोटा होने के कारण **म** से दृढ है इस लिये **पा**$_१$ जिस मेँ य का सब से बडा घात **न−१**, होगा, वह भी **म** से निःशेष होगा योँ बार बार क्रिया करने से अंत मेँ य का एक घात रह जायगा जो कि य के स्थान मेँ किसी $-\frac{म}{२}$ और $\frac{म}{२}$ के भीतर की संख्या के उत्थापन से और **म** के भाग देने से निःशेष हो जायगा। इस तरह से सिद्ध हो गया कि $-\frac{म}{२}$ और $\frac{म}{२}$ इस के भीतर **न** संख्या ऐसी हो सकती हैँ जिन के उत्थापन

से ऊपर का **बहुपद म** के भाग देने से निःशेष हो सकता है।

२। **फरम्याट** के सिद्धान्त से $य^{म-१} - १$ इस मेँ जौँ **म** दृढसंख्या हो तो

१। पहली युक्ति से $-\frac{म}{२}$ और $\frac{म}{२}$ के भीतर ऐसे य के **म−१** मान होँगे जिन के उत्थापन से $य^{म-१} - १$ यह **म** से निःशेष होगा पर

$य^{म-१} - १ = (य^{\frac{म-१}{२}} + १)(य^{\frac{म-१}{२}} - १)$। इस के दूसरे खंड याने $य^{\frac{म-१}{२}} - १$ इस मेँ $-\frac{म}{२}$ और $\frac{म}{२}$ के बीच मेँ १। इस से $\frac{म-१}{२}$ इतने ही मान होँगे जिनके उत्थापन से $य^{\frac{म-१}{२}} - १$ यह **म** से निःशेष होगा इस लिये बाकी $\frac{म-१}{२}$ इतने मान और होँगे जिन के उत्थापन से $य^{\frac{म-१}{२}} + १$ यह **म** से निःशेष होगा क्योँकि ऊपर सिद्ध हो चुका है कि $(य^{\frac{म-१}{२}} + १)(य^{\frac{म-१}{२}} - १) = य^{म-१} - १$ यह, $-\frac{म}{२}$ और $+\frac{म}{२}$ के बीच य के म−१ मान ऐसे हैँ य के स्थान मेँ जिन के उत्थापन से और **म** के भाग देने से निःशेष होगा।

३। २। मेँ जौँ दृढ **म** = ४न+१ तो $\frac{म-१}{२} = २न$ इस लिये $य^{\frac{म-१}{२}} + १ = य^{२न} + १$ यह याने $(य^{न})$ और (१) का वर्ग योग $-\frac{म}{२}$ और $+\frac{म}{२}$ के बीच य के स्थान मेँ **२न** संख्याओँ के उत्थापन से और **म** = (४न+१) के भाग देने से निःशेष होगा इस लिये ४न+१ दृढ भी किसी दो पूरी संख्याओँ का **वर्गयोग** होगा क्योँकि $(य_१^{२} + र_१^{२})(य^{२}_२ + र^{२}_२)$

$= य_१^{२} य^{२}_२ + य^{२}_१ र^{२}_२ + य^{२}_२ र^{२}_१ + र_१^{२} र^{२}_२ = य^{२}_१ य^{२}_२ + २ य_१ य_२ र_१ र_२ + र^{२}_१ र^{२}_२ + य_१^{२} र^{२}_२ - २ य_१ य_२ र_१ र_२$

$+ य^{२}_२ र^{२}_१ = (य_१ य_१ + र_१ र_२)^{२} + (य_१ र_२ - य_२ र_१)_२$

इस लिये इस की उलटी क्रिया से वर्गयोग मेँ किसी **दृढ** के भाग

१५

देने से जो लब्धि पूरी आवे तो वह **दृढ** किसी दो पूरी संख्याओं का **वर्गयोग** होगा।

फरम्याट ने इस की उपपत्ति व्यतिरेक अनुमान पर से की है। उपपत्ति के कागज सन् १८७९ तक नहीं मिले थे पीछे से **ह्युगेन्स** (*Huygens*) की पोथिओं में **लिडेन** (*Leyden*) की **लाइब्रेरी** में मिले।

(४) २ से अधिक दृढसंख्या कोई दो निश्चित संख्याओं के **वर्गांतर** के बराबर है। **फरम्याट** ने इसे इस तरह सिद्ध किया है—

मानो **दृढ=न,** तो प्रश्न के अनुसार

$य^2 - र^2 = (य - र)(य + र) =$ **न**।

पर **न** तो दृढ है इस लिये य–र और य+र इस से निःशेष नहीं हो सकता इस लिये जौं **समीकरण** ठीक किया चाहो तो **य – १ = १** और **य + र** = न होगा। इन पर से $य = \frac{न+१}{२}$ और $र = \frac{न-१}{२}$,

(५) सिद्ध करो कि $य^2 + २ = र^3$ इस में **य** का एक ही मान ५ और $य^2 + ४ = र^3$ इस में य के दो ही मान २ और ११ हैं। **फरम्याट** ने इन दोनों सवालों को **अँगरेजी गणकों** से ललकार कर पूछा था। इस तरह से **फरम्याट** ने बहुत प्रश्न किए हैं।

यूलर ने सन् १७७२ ई में **बर्लिन के मेमोर्स** (*Memoirs of Berlin*) में **दृढसंख्या** के लिये **$य^2 + य + ४१$** यह प्रकार लिखा जो कि य = ४१ में बिगड जाता है। ४१, ४३, ४७, ५३, ... ४० दृढसंख्या ठीक आती हैं पर उस के आगे प्रकार बिगड जाता है। इसी तरह **$य^2 + य + १७$** और **$२य^2 + २९$** ये दोनों भी क्रम से य = १७ और य = २९ में बिगड जाते हैं।

चिति।

आर्यभट ने साफ साफ १ + २ + ३ + ... + इस के योग की विधि नहीं लिखी पर **योगांतर**श्रेढी की योग-विधि अपने **आर्यभटीय** के गणितपाद में—

"इष्टं व्येकं दलितं सपूर्वमुत्तरगुणं समुखमध्यम्।
इष्टगुणितमिष्टधनं त्वथवाद्यन्तं पदार्धहतम्॥",

यह लिखी है। इष्ट से **पद** (गच्छ) और **'इष्टधन'** से **सर्वधन** लिया है। पूर्व से पहली संख्या है जिसे **आदि, मुख,** ... कहते हैं। ऊपर के सूत्र से जिस **श्रेढी** में आदि = आ, उत्तर = चय = च, और पद = गच्छ = इ है उस का

$$\textbf{मध्यधन} = च\,\frac{(इ-१)}{२} + आ = \frac{च(इ-१)+२आ}{२} \text{ और}$$

$$\textbf{इष्टधन} = \textbf{सर्वधन} = इ\left\{\frac{च(इ-१)+२आ}{२}\right\}।$$

इसी को **भास्कर** ने भी अपनी पाटी लीलावती में लिखा है।

ऊपर के सर्वधन में जौं आ = १, च = १, इ = प तो

$$१+२+३+\cdots+प = \frac{प(प+१)}{२}।$$

इस तरह से कह सकते हैं कि **आर्यभट एकादिसंकलित** की विधि जानते थे। उन्हों ने इस **संकलित** का नाम **चिति** रक्खा है। गणितपाद का २२ श्लोक देखो)।

आगे **आर्यभट** ने एक **चिति-घन** या ने एक **सूची** (*Pyramid*) बनाई है। उस की सूरत लिखते हैं कि पहले एक (ईंट) उस के बाद १ + २, (ईंट) यों १ + २ + ३, ... बढाते जाओ। ऐसी **चिति** का **घन** याने **ईंटों** की गिनती जाननी हो तो गच्छ = ग कहो तो **ईंटों की गिनती** $= \frac{ग(ग+१)(ग+२)}{६} = \frac{(ग+१)^3-(ग+१)}{६}$।

उन का सूत्र है —

"एकोत्तराद्युपचितेर्गच्छाद्येकोत्तरत्रिसंवर्गः ।
षड्भक्तः स चितिघनः सैकपदघनो विमूलो वा ॥"

इस चिति की सूरत बनाओ तो नीचे जौँ त्रिभुजाकार १० **ईँटेँ** रक्खो फिर दूसरे थर मेँ ६, तीसरे थर मेँ ३ और चौथे थर मेँ १ तो यह **त्रिभुजाकार** चिति के आधार पर एक **सूची** (*Pyramid*) होगी जिस मेँ सब ईँटेँ = १ + ३ + ६ + १० होँगी।

इस मेँ जौँ थर = पद = प तो

$$१+३+६+१०+\cdots+\frac{प(प+१)}{२}=\frac{प(प+१)(प+२)}{६}$$

इस **चितिघन** से समझ पडता है कि **पटने** के रहनेवाले **आर्यभट** ने **बौद्धोँ** की **समाधि** के ऊपर बनी हुई ऐसी **सूचिओँ** को देखा था इसी लिये उन मेँ लगे हुए **ईँटोँ** की गिनती **चिति–घन** के नाम से निकाली है।

आर्यभट ने $१^२+२^२+३^२+\cdots+प^२$ इस के और $१^३+२^३+३^३+\cdots+प^३$ इस के योग की विधि भी **वर्गचितिघन** और **घनचितिघन** के नाम से निकाली है।

$$\text{वर्गचितिघन}=\frac{प(+१)(२प+१)}{६}$$

$$\text{और घनचितिघन}=\left\{\frac{प(प+१)}{२}\right\}^२ ।$$

(गणितपाद का २२ श्लोक देखो)

जिस को **आर्यभट** ने **चिति** कहा है उसी को और देश-वाले **त्रिभुजाकारसंख्या** (*Trianguler numbers*) कहते हैँ। इन के योग की विधि **पैथागोरास** (*Pythagoras*) को मालूम थी पर आगे **संकलितैक्य** वगैरह की विधि शायद

नहीँ मालूम थी। पीछे इन के स्कूल के पंडित **डाइओफांटस** (*Diophantus*) को मालूम हो गई थी।

अरब के ज्यौतिषिओँ मेँ सब से पहला **अलक़रीह** है जिस ने

$$१^२+२^२+३^२+\cdots+प^२$$
$$=(१+२+३+\cdots+प)\left(\frac{२प+१}{३}\right)$$
$$\text{और}\quad १^३+२^३+३^३+\cdots+प^३$$
$$=(१+२+३+\cdots+प)^२$$

इन दोनोँ प्रकारोँ की उपपत्ति की है।

पीछे से **ब्रह्मगुप्त** ने **चिति** नाम को उडा कर **संकलित, संकलित–संकलित,** ... नाम रक्खे (मेरे छपवाए **ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त** का १८८ पृ. देखो)।

फिर इन के पीछे **श्रीधर, भास्कर,** ... ने भी यही नाम लिख कर विधिओँ को लिख चले हैँ।

यूरप मेँ **प्यासकल** (*Pascal*) ने सन् १६५३ ई. मेँ **पाटीत्रिभुज** (*Arithmetical triangle*) के नाम से **संकलित, संकलितैक्य,** ... **श्रेढीपरंपरा** लिखी है जो सन् १६६५ ई. मेँ छापी गई।

आर्यभट, ब्रह्मगुप्त, ... **योगान्तर** श्रेढी का गणित जानते थे पर गुणोत्तरश्रेढी के गणित की कहीँ भी इन के ग्रंथोँ मेँ चर्चा नहीँ है।

दूसरे **आर्यभट** ने अपने **महासिद्धान्त** मेँ गुणोत्तर श्रेढी लिखी है पर उन के ग्रंथ का विशेष प्रचार न था।

जान पडता है कि संस्कृत मेँ गुणोत्तर श्रेढी का गणित पृथूदक चौबे (पृथूदक स्वामी) ने जो लिखा है इन्हीँ की विधि पीछे

से **भास्कर** ने अपनी **लीलावती** में लिख दी है। (मेरा छपवाया **ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त** का १८६ पृ. देखो)।

भास्कर आदर के लिये **पृथूदक** को **चतुर्वेदाचार्य** कहते हैं। ये **कन्नौज** के रहनेवाले थे। इन्हों ने **ब्रह्मगुप्त** के **ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त** के ऊपर बहुत अच्छी एक टीका बनाई है। उस टीके की एक खंडित पुरानी प्रति **इंडिया-आफिस** की लाइब्रेरी में है। (**ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त में मेरी भूमिका देखो**)।

यंत्र । (*Majic Squares*)

३, ४, ५,... के **वर्गकोठे** में एक एक अंक की बढती से इस तरह से अंक भरे जाते हैं जहाँ **तिरछे, खडे और कर्णों** के **कोठों** के अंकों का योग बराबर होता है। ऐसे **वर्गचक्र** को संस्कृत के पंडित **यंत्र** कहते हैं।

नारायण पंडित ने इस का नाम **भद्र** रक्खा है। जैसे—

८	१	६
३	५	७
४	९	२

इस **नव** कोठे में एक एक की बढती से इस चाल से अंक भरे हैं—

जहाँ तिरछे, खडे और कर्णों के कोठों के अंकों के योग १५ होते हैं।

इस लिये इसे **पंद्रहा यंत्र** कहते हैं।

जिस **वर्ष** संयोगवश **रवि** या **मंगल** के दिन **दिवाली** पड जाती है उस दिन **महानिशा (आधीरात)** में **तांत्रिक** पवित्र होकर **अष्टगंध** की **स्याही** और **अनार** की **कलम** से **भोजपत्र** के ऊपर एक **श्वास** से इस की अनेक प्रति लिख कर अपने पास रख छोडता है। **हिंदू लोग** उस **तांत्रिक** को कुछ दे कर इस **यंत्र** को मोल लेते हैं। उसे **चाँदी** के **यंत्र** के बीच

भर कर अपने गले या **बाहु** में बाँधते हैं। कहावत है कि इस के पहनने से **भूत, प्रेत, महामारी**... की बाधा नहीं होती। **गणित** से सिद्ध है कि **नव** कोठे में पूरे पूरे अंकों के भरने से बीसा (२०) नहीं हो सकता तौ भी आज तक गवाँर लोग इस के फेर में पडे रहते हैं और कहा करते हैं कि

'सिद्ध होय बीसा। का करैं जगदीसा॥'

तरह तरह के कामों के लिये तरह तरह के **बीसा, तीसा, चौंतीसा,... यंत्र** भरे जाते हैं। सभी **वर्ग कोठे** में इस तरह के अंक भरे जा सकते हैं। यद्यपि इस का कुछ विशेष संबंध **गणितशास्त्र** से नहीं है, कुछ **योगश्रेढ़ी** का काम पडता है तौ भी बहुत से लोगों ने एक **खेल** समझ कर इस के भरने की बहुत रीतिआँ दिखलाई हैं। मैं ने भी **भास्कर-लीलावती की टिप्पणी** में सब **वर्गचक्रों** में अंक भरने की रीति लिखी है उस का अलग **हिंदी अनुवाद** भी सब के समझने के लिये छपवा दिया है। उस में **४न + २** इस के **वर्गचक्र** में भी अंक भरने की विधि लिखी है जो कि **यूरप** के ज्यौतिषिओं के लिये बहुत कठिन मालूम होती थी।

इस **यंत्र** के पहनने से **भूत, प्रेत,... नगीच** नहीं आते यह विश्वास **हिंदु ही** में नहीं है बल्कि **यूरप** में भी **प्लेग** से बचने के लिये लोग **चाँदी** के **पत्तरों** पर **यंत्रों** को खुदवा कर पहनते थे। **आल्बर्ट डूरर्** (*Albert Dürer*) ने सन् १५०० ई. में एक **तसबीर** में बड़ी **खूबसूरती** के साथ एक **यंत्र** को बनवाया है। **बौद्धों** में भी इस का बहुत प्रचार है।

संस्कृत के **तंत्रशास्त्रों** में इन **यंत्रों** की बडी महिमा लिखी है। **अरब** के लोगों में भी इस का प्रचार है।

हिंदुस्तान में इन यंत्रो का कब से प्रचार हुआ इस का पता ठीक ठीक नहीं लगता पर **व्यवहार** से जान पडता है कि बहुत पुराने समय से ये प्रचलित हैं। **नारायण पंडित** ने अपनी **गणित-कौमुदी** में जो सन् १३५६ ई. में बनाई गई है, इन **वर्गचक्रों** में और और तरह तरह के चक्रों में अंक भरने की बहुत विधि लिखी है। उस में लिखा है कि (राजा) **माणिभद्र** के लड़के के लिये ये सब **यंत्र** लिखे गए हैं। ऐसे वर्ग कोठों में अंक भरने से जोडने के बहुत उदाहरण बन जाते हैं जिन सभों का एक ही उत्तर होता है (**भास्कर की लीलावती** में मेरा योगचक्र देखो)।

यूरप में सब से पहले **मोसकोपलस** (*Moschopulus*) ने जो कि सन् १४७० ई. में **इटली** में मरे, इन वर्ग-चक्रों के ऊपर बहुत विचार किए थे।

इन के हाथ की लिखी पोथी **प्यारिस** की **नेशनल ला-इब्रेरी** (*National Library*) में मौजूद है। वहाँ की पोथिओं में उस का २४२८वाँ नंबर है।

पीछे से **यूलर** (*Euler*) ने सन् १७५९ ई. में **बर्लिन** के (*Hist. del,Acad. des Sciences*) में इस के ऊपर बहुत बातें लिखीं।

इस के विषय में जिन्हें और बातों के जानने की जरूरत हो वे संस्कृत में **नारायण पंडित** की **गणितकौमुदी** देखें और **यूरप** के पंडितों की विधि जाननी हो तो

Quarterly Journal of pure and Applied Mathematics, Vol. X., *p. 186; Vol.* XI., *pp. 57, 123, 213; Vol.* XII., *p. 213: The Messenger of Mathematics, Vol.* II.: *the Nouv. Corr. Math. Vol.* II., *pp. 161, 193; and the Report for 1880 of the French association for the advancement of science.* इन ग्रंथों को देखें।

तंत्रशास्त्र में तरह तरह के चक्र बना कर उन में जगह जगह पर शब्दों को लिख कर बहुत यंत्र बनाए गए हैं। उन में से एक **श्रीयंत्र** की बड़ी महिमा लिखी है। **देवी** के पूजनेवाले इसे **ताँबे, चाँदी, सोने** के पत्तरों पर या **बिल्लौर पत्थर** पर खोदवा कर रोज **पूजते** हैं। कहते हैं कि **पूजने** से **मनोरथ** पूरा होता है। इस का भी प्रचार बहुत पुराने समय से है। इस तरह के सैकड़ों **यंत्र हिंदुस्तान** में प्रचलित हैं। कहावत है कि जिस के गले में सच्चा **बीसा** बँधा हो उसे **तलवार** की **चोट** नहीं लगती।

बहुतों का मत है कि **हिंदुस्तान** में **तंत्रविद्या चीन** से आई है।

पैथागोरास (*Pythagoras*) के स्कूल के पंडितों में भी **यंत्रों** का प्रचार था।

इस **पच कोने यंत्र** पर उन लोगों की बहुत **श्रद्धा** थी। उन लोगों को विश्वास था कि इस यंत्र के **पूजने** से देह **नीरोग** रहती है। जैसे **श्रीयंत्र** में अक्षर लिखे जाते हैं वैसे ही इस के पाँचों कोनों पर ὑγίεια (**नग्यिइआ**) इस शब्द के एक एक अक्षर लिखे जाते थे ει इन दोनों **अक्षरों** की जगह एक ही **अक्षर** θ लिखते थे।

यह **पचकोना हिंदुस्तान** में भी बहुत पुराने समय से प्रसिद्ध है। तीन तीन की गिनती कर बहुत लोग इस के दो दो रेखाओं के योगों पर **गोटी** बैठाते हैं। **शर्त** यह है कि जहाँ **गोटी** बैठ गई हो वहाँ से गिनती न शुरू हो। इस तरह **गोटिआँ** बैठ जाती हैं और एक जगह खाली रह जाती है। इसे बहुत लोग **नव गोटिआ** भी कहते हैं।

मैसूर के **हसन** जिले के एक गाँव में एक **फाटक** के **पत्थर** पर एक **यंत्र** खोदा हुआ है उस के एक कोठे में यह **पचकोना** भी है। लोगों को विश्वास है कि गाँव के **फाटक** पर ऐसे यंत्र के रहने से **पशुओं** में कोई बीमारी नहीं फैलती। अनुमान किया जाता है कि यह **खंभा** जिस पर यंत्र खोदा है **हजार** वर्ष का पुराना है।

(See The Indian Antiquary, February, 1873)

पैथागोरास (*Pythagoras*) **ईशा** के ५६९ वर्ष पहले **समोस** (*Samos*) में पैदा हुए थे। इन के माँ बाप **तैरियन** (*Tyrian*) थे। यह ६० वर्ष की उमर में मरे। इस से साफ है कि ये **थेल्स** (*Thels*) के समय में थे। इन के जीवन-चरित में बहुत संशय है। जहाँ तक पता लगता है उस से जान पडता है कि पहले ये **सिरोस** के **फेरेसिडेस** (*Pherecydes of syros*) से फिर पीछे **अनाक्सिम्यांडर** (*Anaximander*) से पढे थे। गुरु के कहने से पढ लेने पर ये **थेबेस** (*Thebes*) या **मेम्फिस** (*Memphis*) में गए। वहाँ पर कई वर्ष तक ठहरे थे। फिर एजिप्ट छोड कर इन्हों ने **एशिया माइनर** की **यात्रा** की और तब **समोस** में ठहर कर व्याख्यान देना आरंभ किया पर इस से कुछ फल न हुआ। **ईशा** के ५२९ **वर्ष** पहले अपनी **माँ** के साथ ये **सिसिली** (*Sicily*) गए। अपने एक योग्य **विद्यार्थी** को भी **समोस** से साथ लेते गए। वहाँ से **टारेंटम** (*Tarentum*) गए पर जल्द लौट कर **इटली** के दक्षिण **डोरियनद्वीप** (*Dorian*) के **क्रोटन** (*Croton*) स्थान में गए। यहाँ पर इन्हों ने कई **स्कूल** खोले जिन में बडे बडे **धनिओं** के लड़के पढ़ने लगे इस लिये वे **स्कूल** थोडे ही दिनों में बहुत प्रसिद्ध हो गए, जिस से **पैथागोरास** का बडा नाम हुआ। वहाँ **स्त्रिओं** के बाहर निकलने और **कमेटिओं** में शरीक होने की **रीति** न थी पर **स्त्रिआँ** उस नियम को तोड कर **पैथागोरास** के देखने के लिये जाती थीं।

पैथागोरास ने अपने एक **नातेदार मिलो** (*Milo*) की बेटी **थेनो** (*Theano*) से बुढ़ौती में ब्याह कर लिया था। **थेनो** बडी खूबसूरत थी; इस ने अपने पति का **जीवन-चरित** भी लिखा था पर बड़े दुःख की बात है कि वह नष्ट हो गया।

पैथागोरास हिंदुस्तान में आया था या नहीं इस में बहुत संशय है। जो हो पर बहुतों का यह कहना कि **पैथागोरास हिंदुस्तान** में आ कर **पटने** के **आर्यभट** से **गणित** पढा था यह बिल्कुल **झूठ** बात है क्योंकि **पैथागोरास आर्यभट** से १०२७ वर्ष पहले हुआ है। यह संभव है कि जो **पैथागोरास हिंदुस्तान** में पढने के लिये आया हो तो किसी और **पंडित** से **पटने** में पढा होगा।

तुरकों ने सन् १४५३ ई. में जब **कान्स्टांटिनोपेल** (*Constantinople*) को **लूटा** उसी समय **ग्रीस** के **गणित-स्कूल** टूट जाने से **ग्रीस** के पंडित इधर उधर भटकने लगे। बहुत से **इटली** में चले गए उन्हीं लोगों से **यूरप** में गणित-विद्या फैली।

विलोम गणित।

संस्कृत के **अंकगणित** में सब से प्राचीन ग्रंथ जो अभी तक मिला है, **आर्यभट** का है, जो कि सन् ४९८ ई. में बना है, उस में **विलोम गणित** का प्रकार लिखा है—

"गुणकारा भागहरा भागहरा ये भवन्ति गुणकाराः।
यः क्षेपः सोऽपचयोऽपचयः क्षेपश्च विपरीते॥"

(गणितपाद, २८ श्लो.)।

इसी को **व्यस्तविधि** भी कहते हैं।

लल्ल का **पाटीगणित** नहीं मिलता इस लिये नहीं कह सकते कि उन्हों ने क्या लिखा है। इस में कुछ **ब्रह्मगुप्त** ने अपने **ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त** के **कुट्टकाध्याय** के १४ वें श्लोक में विशेष किया है—

"गुणकश्छेदश्छेदो गुणको धनमृणमृणं धनं कार्यम्।
वर्गः पदं पदं कृतिरन्त्याद्विपरीतमाद्यं तत्॥

इस में **वर्ग** का **मूल** और **मूल** का **वर्ग** करना इतना विशेष है।

भट्ट बलभद्र और **श्रीपति** के अंकगणित नहीं मिलते।

श्रीधर अपनी बड़ी **पाटी** में शायद इस पर कुछ विशेष लिखे हों पर उन की **त्रिशतिका (पाटीसार)** में इस गणित की कुछ चर्चा नहीं है।

सब के बाद **भास्कराचार्य** ने अपनी **लीलावती** में सब तरह से **विलोमक्रिया** की पूरी रीति लिखी क्योंकि जहाँ राशि ही का कुछ **अंश** राशि ही में **मिलाया** या **घटाया** गया हो वहाँ **विलोमक्रिया** में क्या करना इस पर **ब्रह्मगुप्त** ने कुछ भी नहीं लिखा है।

संस्कृत की **पाटी** में सब से प्रधान **त्रैराशिक** है। **भास्कर** के मत से **त्रैराशिक** ही **पाटी (अंकगणित)** है। उन्हों ने अपनी **पाटी लीलावती** में लिखी दिया है कि—

"अस्ति त्रैराशिकं पाटी"।

इष्टकर्म से राशि का मान जानना, **बावली** की नालिओं के पानी से भरने का समय जानना, **साझे** के धन को बाँटना, सैकड़े का सूद निकालना, **मिश्रधन** जान कर ब्याज अलगाना, जुदे जुदे भाव के सोने को गला कर मिलाए हुए **सोने का भाव** जानना,

एक चीज के बदले दूसरी चीज लेना,··· सब के लिये **त्रैराशिक** से रीति बनाई गई है।

स्वांशानुबंध और स्वांशापवाह।

संस्कृत पाटी में एक गणित **स्वांशानुबंध** और **स्वांशापवाह** है। जहाँ राशि में उसी का कुछ भाग मिलाना होता है उसे **स्वांशानुबंध** कहते हैं।

जैसे—

साल में पाँच रुपए सैकडे ब्याज के हिसाब से ४०० रुपए दिए गए, और शर्त्त यह हुई कि हर साल के अंत में **ब्याज** और **मूलधन** का योग मूल धन समझा जायगा तो **चार साल** के अंत में क्या **मिश्रधन** होगा। यहाँ हर साल में **मूल धन** में उसी का बीसवाँ भाग जुटता जायगा इस लिये यह स्वांशानुबंध या स्वभागानुबंध हुआ। संस्कृत में लिखी रीति से इस का उत्तर

$\frac{४००\times २१^४}{२०^४} = \frac{२१^४}{२०^२}$ यह हुआ।

जहाँ राशी में उसी का कुछ भाग **घटाना** होता है उसे **स्वांशापवाह** या **स्वभागापवाह** कहते हैं।

जैसे—

पाँच आदमिओं के लिये एक **बर्त्तन** में **५ सेर** दूध रक्खा था। एक आदमी **चोरी** से एक सेर दूध **निकाल** कर उस में एक सेर पानी मिला दिया। इसी तरह बाकी और चार आदमिओं ने सेर सेर भर की चोरी की और सेर सेर भर पानी मिलाते गए, तो अंत में पानी मिले दूध में **कितना दूध** रह गया।

यहाँ **बर्त्तन** में जो पहले ५ सेर दूध और पीछे से पानी मिला ५ सेर दूध रहेगा उस का पाँचवाँ भाग हर वार घटता जायगा इस लिये यह **भागापवाह** हुआ।

संस्कृतविधि से इस का उत्तर $= \frac{५ \times ४^{५}}{५^{५}} = \frac{४^{५}}{५^{४}} = \frac{१०२४}{६२५}$ यह हुआ।

पीछे से मिलाने को **अनुबंध** और निकालने को **अपवाह** कहते हैं इस लिये अपने भागों या अंशों के **मिलाने** और **निकालने** से इस गणित का नाम **स्वांशानुबंध** और **स्वांशापवाह** पडा।

इष्टकर्म।

राशि में उसी के कई एक अंश **मिले** या **घटे** रहने पर जो **मान** हो वह बता दिया जाय तो उस को जान कर राशि जानने की क्रिया को **'इष्टकर्म'** कहते हैं।

(हकीकत में यह प्रश्न **बीज** के **एकवर्णसमीकरण** का है)।

जैसे— वह कौन राशि है जिस की तिहाई और चौथाई निकाल देने पर १० रह जाता है। इस में मान लो कि वह राशि इष्ट, १ है तो प्रश्न के अनुसार कर्म करने से

$१ - \left(\frac{१}{३} + \frac{१}{४}\right) = \frac{५}{१२}$ यह बचा। अब दृश्य $= १०$ को इष्ट १ से गुण कर बचे $\frac{५}{१२}$ से भाग देने पर राशि का मान $= \frac{१० \times १}{\frac{५}{१२}}$

$= \frac{१० \times १ \times १२}{५} = २४$।

दूसरे देश के लोग कहते हैं कि **संस्कृत पाटी** में बहुत **बीजगणित** के प्रश्नों के उत्तर निकालने के लिये एक गणित **'द्वीष्टकर्म'** है पर आज तक संस्कृत के जितने पाटीगणित मिले हैं किसी में **'द्वीष्टकर्म'** नहीं है। शायद **बौद्धों** के **अंकगणित** में हो तो हो।

मैं ने **भास्कर** की **लीलावती** की **टिप्पणी** में **'द्वीष्टकर्म'** लिखा है। **बापूदेवशास्त्री**जी ने भी अपने **हिंदी बीजगणित** और **भास्कर-लीलावती- टिप्पणी** में **'द्वीष्टकर्म'** लिखा है।

ज्यौतिष-सिद्धान्तों में संस्कृत के ज्यौतिषी **महापात** निकालने में अलबत्त **दो इष्ट** मान कर क्रिया करते हैं जो कि **'द्वीष्टकर्म'** ही का एक भेद है (**ज्यौतिष-सिद्धान्त** का **पाताधिकार** देखो)।

द्वीष्टकर्म से **बीज** के एक **वर्णसमीकरण** के बहुत प्रश्नों का उत्तर हो जाता है। **बीजगणित** से सिद्ध है कि किसी **एकवर्णसमीकरण** का **पक्षान्तरानयन** करने से

$\text{अ}\cdot\text{य} + \text{क} = ०$ ऐसा रूप हो सकता है। इस में मानो कि जब $\text{य} = \text{इ}_{१}$ और $\text{य} = \text{इ}_{२}$ तो **समीकरण** का क्रम से मान **मा**$_{१}$ और **मा**$_{२}$ हुआ तो

$\text{अ}\cdot\text{य} + \text{क} = ०$। $\text{अ}\cdot\text{इ}_{१} + \text{क} = \text{मा}_{१}$। $\text{अ}\cdot\text{इ}_{२} + \text{क} = \text{मा}_{२}$।

अंतर करने से $\text{अ}\,(\text{इ}_{१} - \text{य}) = \text{मा}_{१}$।

$\text{अ}\,(\text{इ}_{२} - \text{य}) = \text{मा}_{२}$।

आपस में भाग दे देने से $\frac{\text{इ}_{२} - \text{य}}{\text{इ}_{१} - \text{य}} = \frac{\text{मा}_{२}}{\text{मा}_{१}}$।

$\therefore \text{इ}_{२}\cdot\text{मा}_{१} - \text{मा}_{१}\cdot\text{य} = \text{इ}_{१}\cdot\text{मा}_{२} - \text{मा}_{२}\cdot\text{य}$

और $\text{य} = \frac{\text{इ}_{१}\text{मा}_{२} - \text{इ}_{२}\text{मा}_{१}}{\text{मा}_{२} - \text{मा}_{१}}$, इसी को **द्वीष्टकर्म** कहते हैं।

अरब के **गणक इष्टकर्म** और **द्वीष्टकर्म** को जानते थे। **यूरप** के लोग **इष्टकर्म** को **रेग्युला फाल्सा** (*Regula falsa*) या **फाल्सा पासिटिओ** (*Falsa positio*) और **द्वीष्टकर्म** को **रेग्युला दौरम् फाल्सोरम** (*Regula Duorum falsorum*) कहते हैं।

डाइओफांटस (*Diophantus*) ने **द्वीष्टकर्म** से **वर्ग समीकरण**,··· के प्रश्नों का भी स्थूल उत्तर निकाला है।

जैसे फ (य) = ब, यह एक समीकरण हो तो मान लो कि इस में य = अ, और य = क तो फ (अ) = आ और फ (क) = का हुआ। अंतर करने से

$$\text{ब}-\text{आ} = \text{ज}_{\text{अ}} \text{ और } \text{ब}-\text{का} = \text{ज}_{\text{क}} \text{ तो}$$

$$\text{य} = \frac{\text{क}.\text{ज}_{\text{अ}} - \text{अ}.\text{ज}_{\text{क}}}{\text{ज}_{\text{अ}} - \text{ज}_{\text{क}}} \text{।}$$

फ (य) = ब, इस में जौं य का एक घात रहेगा तो ऊपर दिखाई गई **द्वीष्टकर्म** की विधि ही यह हो जायगा और य का मान ठीक आ जायगा। पर य के वर्ग, घन,... रहने से **स्वल्पांतर** से य का मान आवेगा।

संस्कृत के **अंकगणित** में बहुत **बीजगणित** के प्रश्नों के उत्तर निकालने के लिये प्रकार लिखे हैं जिनका वर्णन **बीजगणित के भाग** में किया जायगा।

यूरप के लोगों ने **भास्कर** की **लीलावती** के प्रश्नों से उस समय की रीति का अनुमान करते हैं 'प्राप्नोति चेत् षोडशवत्सरा स्त्री' इस **प्रश्न** से एक महाशय ने अनुमान किया है कि उस समय स्त्री १६ वर्ष में ठीक जवान समझी जाती थी। **हिंदुस्तान** में अब भी १६ वर्ष की स्त्री जवान समझी जाती है (**सुश्रुत** देखो), 'प्राप्ते तु षोडशे वर्षे शूकर्यप्यप्सरायते'।

'मासे शतस्य यदि पञ्च कलान्तरं स्यात्...' इस पर से अनुमान किया गया है कि उस समय एक महीने में सौ पर ५, ३$\frac{१}{३}$ **रुपए** बहुत ज्याद **सूद** लिए जाते थे पर **बीजगणित** में एक जगह **भास्कर** ने 'एककशतदत्तधनात्' इस में महीने में सौ का एक ही रुपया सूद लिखा है। इतना कहने का इतना ही मतलब है कि सब समय में **गर्ज** पडने पर सब का भाव तेज और मंदा हुआ करता है। ऐसे ऐसे स्थानों में अनुमान से पक्का पता नहीं लग सकता।

एक-दो... भेद (*Combinations*)।

हिंदुस्तान में बहुत पुराने समय से इस गणित का व्यवहार है।

छंदःशास्त्र में यह जिस रीति से निकाला जाता है उसे **मेरु (पहाड)** कहते हैं।

जैसे ६ के भेद निकालने हैं तो एक **चोटी** और एक एक कोठे की बढती से **छ सीढी** का एक **पहाड** बना कर पहले कोठे में एक और हर एक सीढी के दोनों किनारों के कोठों में एक एक लिखेंगे। फिर ऊपर के पास पास के दो दो कोठों के अंकों के योगों को नीचे के कोठों में रखते जायँगे जैसा कि इस **पहाड** में है—

|१|
१	१
१	२	१
१	३	३	१
१	४	६	४	१
१	५	१०	१०	५	१
१	६	१५	२०	१५	६	१
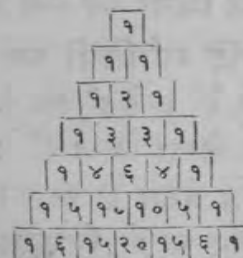
अंत की सीढी में जो १।६।१५।२०। १५।६।१। हैं वही भेद हैं। **वृत्तरत्नाकर** की टीका में **नारायणभट्ट** ने प्राचीन-कारिका लिखी है—

"आदावेकं लिखेत् कोष्ठं तदधो द्वे च संलिखेत्।
तदधस्त्रीणि कोष्ठानि एवं रूपेण वर्धयेत्॥
आदावेकं लिखेत् कोष्ठमेकं मध्यं च पूरयेत्।
लेखकोष्ठोपरिप्राप्तैरग्रिमाङ्केन संयुतैः॥"

इस भेद के विषय में जिन्हें बहुत बात जाननी हो वे **पिंगल** या **नारायण पंडित** की बनाई **गणितकौमुदी** देखें।

भास्कराचार्य ने अपनी **लीलावती** में इस भेद का जो प्रकार लिखा है वही आज कल **अँगरेजी बीजगणितों** में प्रचलित है। **भास्कर** ने भी लिखा है कि यह **छंदःशास्त्र** के **खंडमेरु** में प्रसिद्ध है।

संस्कृतपाटी में **क्षेत्रव्यवहार, कुट्टक** और **अंक-पाश** भी बहुत विस्तार से लिखे गए हैं। **रेखागणित** के वर्णन में **क्षेत्रव्यवहार** का और **बीजगणित** के वर्णन में **कुट्टक** और **अंकपाश** का वर्णन किया जायगा।

हिंदुस्तान के पुराने **संस्कृत** के **पंडित** अभिमान की बात समझ कर अपना **जीवन-चरित** नहीं लिखते थे। **जहाँ-गीर** के समय की बात है; **भट्टोजिदीक्षित** ने अपनी **सिद्धान्तकौमुदी** में अपना नाम तक नहीं लिखा है।

नाम और **मिती** लिखने की कुछ **चाल संस्कृत** के **ज्यौतिषिओं** में थी पर जिस समय किसी का **संवत्** और **शाका** नहीं था उस समय किसी **ब्रह्मर्षि** के हृदय में **गणित** के जड और **अंक स्थान** पैदा हुए इसलिये वह **मिती** कैसे लिखे।

हम लोग सब से बडा **ब्रह्मा** को **आदि ज्यौतिषी** कहते हैं जो कि **ज्यौतिषवेदांग** के बनानेवाले हैं। वे ही सब के माथों में **छट्ठी** के दिन भले बुरे कामों का **लेखा** लिखते हैं। इस लिये वह **अंक** बनानेवाला **महाब्रह्मर्षि ब्रह्मा** हो कर सब का **पितामह** हुआ उस की प्रशंसा **शेष** भी करे तो **निःशेष** नहीं हो सकती। अंत में यही कहना है कि जिस की प्रशंसा **हिंदू, मुसलमान, क्रिस्तान**··· सब एक स्वर से करते हैं वह **अंक** का **विधाता हिंदुस्तान** की कीर्त्ति को संसार भर में फैलानेवाला **धन्य** है।

नई कल्पना।

नैयायिकों का मत है कि **परमाणुओं** के संयोग से **सृष्टि** की सब चीजें पैदा हुई हैं। दो **परमाणुओं** के संयोग से **द्व्यणुक,** तीन के संयोग से **त्र्यणुक**··· बने हैं। थोडे **परमाणुओं** के संयोग से **छोटी सरसो** और बहुत **परमाणुओं**

के संयोग से **बडा मेरु (पहाड)** बना है। जहाँ जितने कम **परमाणुओं** का **संयोग** रहेगा वहाँ वह उतनी ही **छोटी चीज** होगी।

इस लिये कह सकते हैं कि **सृष्टि-रचना** के नियम से सब से छोटी संख्या (**परमाणु**) के झुंडों के मिलने से १, २,··· ये सब संख्याएँ भी बनी होंगी।

जैसे— $\frac{१}{२}+\frac{१}{२^{२}}+\frac{१}{२^{३}}+\cdots$ इस अनंत पद की **गुणोत्तर श्रेढी** में अंत का पद सब से छोटा याने **परमाणु** होगा। इस लिये **श्रेढी** को उलट कर लिखने से पहला पद **परमाणु,** दूसरा दो **परमाणु,** तीसरा ४ **परमाणु,**··· होगा और सब **परमाणुओं** का योग

$$=\frac{१}{२}+\frac{१}{२^{२}}+\frac{१}{२^{३}}+\cdots=\frac{\frac{१}{२}}{१-\frac{१}{२}}=१$$ (**श्रेढी**गणित से)।

इस लिये कहेंगे कि बहुत **परमाणुओं** के संयोग से १ बना है।

नई संख्या।

जो १; २, ३,··· संख्याएँ प्रचलित हैं, इन से **असंभव-संख्या** याने $\sqrt{-१}=\iota$ यह जिस में हो, नहीं गिन सकते इस लिये आज कल **नए गणकों** का सिद्धान्त है कि ऐसा अंकों का रूप होना चाहिए जिस से **संभव, असंभव** सभी संख्याएँ पैदा हों। वे लोग इस के लिये संख्या का

$अ+\iota क$ यह रूप बनाया है। इस में **अ** और **क संभव** संख्या हैं। इस में जौं **क** $=०$ और **अ** $=१, २, \cdots \frac{१}{२}, \frac{१}{३}\cdots,$ $-१, -२, \cdots$ मानो तो साधारण **धन** या **ऋण** संख्या होंगी।

इस तरह से **$अ+\iota क$** यह सब **संभव** और **असंभव** संख्याओं को पैदा कर सकता है फिर इन से सभी गणित के प्रकार बन सकते हैं। क्योंकि

$$\text{ज्याय} = \frac{१}{२\iota}(\text{इ}^{\iota\text{य}} - \text{इ}^{-\iota\text{य}})$$ और

$$\text{को ज्याय} = \frac{१}{२}(\text{इ}^{\iota\text{य}} + \text{इ}^{-\iota\text{य}})$$

ये दोनों **असंभव** ι से **संभव** पदार्थ **त्रिकोणमिति** और **बीजगणित** से सिद्ध होते हैं ।

अ+ιक इसे **मिश्रित संख्या** (*Complex numbers*) कहते हैं । इस से हजारों नए प्रकार बनते चले जाते हैं । अभी सन् १९०२ ई. में **ह्विटकर** (*S. T. Whittaker, M. A.*) साहब ने इस विषय पर एक बहुत बडी पुस्तक क्यांत्रिज में छपवाई है जिस का नाम **नए विचार की पोथी** (*Course of modern Analysis*) है ।

लघुरिक्थ (*Logarithms*) ।

यह गणित **हिंदुस्तान** में नहीं था। संस्कृत के किसी ग्रंथ में इस की चर्चा नहीं है। **बापूदेवशास्त्रीजी** ने अपनी **त्रिकोणमिति** में **'प्रघातमापक'** नाम से इस का व्यवहार किया है पर यह कैसे बनाया गया इस की कुछ चर्चा नहीं की । मैं समझता हूँ कि सब से पहले संस्कृत में मैं ने ही अपने **'दीर्घवृत्तलक्षण'** में इस के जानने की विधि लिखी है। मैं ने ही इस का नाम **'लघुरिक्थ'** रक्खा है । मरने के बाद **बाप** जो कुछ धन छोड जाता है उसे संस्कृत में **'रिक्थ'** कहते हैं । जैसे १०^{७} इस के मर जाने पर जो ७ रह जाता है उसे कह सकते हैं कि **लघु**-(छोटा) रिक्थ है । **अँगरेज़ी** नाम से नाम मिलता रहे जिस में **अँगरेज़ी** और **संस्कृत** दोनों भाषाओं के जाननेवालों को नाम याद रखने में सुभीता पडे और नाम भी एक तरह से सार्थक हो इस लिये मैं ने **'लघुरिक्थ'** नाम रक्खा है ।

जान नेपिअर (*John Napier*) **स्काटल्यांड**

में **मर्चिस्टन** के **ब्यारन** (*Baron of merchiston*) थे। इन का जन्म सन् १५५० ई. और मरण सं. १६१७ ई. **अप्रिल** की २ तारीख को हुआ था ।

बडे अचरज की बात है कि जब **लघुरिक्थ** जानने के लिये $\text{य} - \frac{\text{य}^{२}}{२} + \frac{\text{य}^{३}}{३} - \frac{\text{य}^{४}}{४} + \cdots$ यह सिद्धान्त नहीं जाना गया था उस के पहले ही **नेपिअर** ने **लघुरिक्थों** को निकाला है । **स्टिफेल** (*Stifel*) और **स्टिवेन** (*Stiven*) के मन में यह बात आई थी कि संख्याओं को किसी एक संख्या के **घातरूप** में लावें पर उन दोनों को **लघुरिक्थ** का पता न लगा ।

ह्यारिओट (*Harriot*) का बीज **नेपिअर** के मरने के बहुत पीछे प्रकाश हुआ पर उस में भी **लघुरिक्थ** की चर्चा नहीं है । बहुत दिनों तक इस का पता न था कि **लघुरिक्थ** एक किसी संख्या का घातांक है। पीछे से सब से पहले **यूलर** (*Euler*) ने इस बात का पता लगाया कि संख्याओं के **लघुरिक्थ** एक किसी **स्थिरसंख्या के घातांक** हैं ।

नेपिअर सिद्धांती थे (*Astronomer*)। ग्रहों के गणित में **जीवा, कोटिज्या,**··· के **गुणन, भजन** में बडी मेहनत पडती थी और समय भी बहुत **खराब** होता था उन को बचाने के लिये उन्हों ने १०^{७} त्रिज्या में पहले **जीवाओं** का लघुरिक्थ बनाया ।

नेपिअर ने **लघुरिक्थ** बनाने का ऐसा प्रकार लिखा है—

मानो कि **अक** एक नियत रेखा =१०^{७}=त्रिज्या, और दूसरी **घच** अपरिमित रेखा

ग ——— अ ——— क

घ ——— छ ——— च

घ से अनंत दूर **च** तक चली गई है । **ग** बिंदु **अक** में और **छ** बिंदु **घच** में **अ** और **घ** स्थान से एक ही क्षण में **क** और **च**

की ओर इस तरह से चलती हैँ कि पहले क्षण मेँ दोनोँ की एक ही गति है और हर एक क्षण मेँ **छ** की समान गति है पर **ग** की गति किसी क्षण मेँ **गक** के संबंध से **घटती** जाती है। मानो कि जब **ग अग** तुल्य चला तो **छ घछ** तुल्य चला।

नेपिअर (*Napier*) **घछ** को **कग** का लघुरिकथ कहते हैँ।

जौँ कग = र, अक = अ और **घछ** = य। **अ** से **ग** तक चलने मेँ या **घ** से **छ** तक चलने मेँ जो **सेकेंड** हुए उन्हेँ **का** कहेँ तो **'चलनकलन'** (*Differential*) से जौँ **अग** = अ—र तो **ग** का वेग कल्पनानुसार

$$र = \frac{ता\,(अ—र)}{ताका} \therefore ताका = -\frac{तार}{र}$$ और **चलराशिकलन** से

$-$**ला र** = का + स्थि। यहाँ जब र = अ = $१०^{७}$ तो का = ०

इस लिये स्थि = $-$ला $१०^{७}$। और य = का · अ जौँ एक **सेकंड** मेँ **छ** की गति **अ** मानेँ। **का** और **स्थिर का** उत्थापन देने से

$$य = का \cdot अ = १०^{७}\,(-लार - स्थि) = १०^{७}\,ला\,\frac{१०^{७}}{र}$$। इस लिये **नेपिअर** की **परिभाषा** से—

$$र \text{ का नेपिअर का लघुरिक्थ} = १०^{७}\,ला\,\frac{१०^{७}}{र}$$ ।

इस से साफ है कि **नेपिअर** का **लघुरिक्थ** आज कल का प्रचलित **नेपिअर-लघुरिक्थ** नहीँ है।

नेपिअर ने अक = $१०^{७}$ को **त्रिज्या** (व्यासार्ध) और **र** को किसी **चाप की जीवा** माना था और ऊपर की **क्रिया** से **जीवा** का **लघुरिक्थ** निकाला था। इस मेँ संशय नहीँ कि **नेपिअर** का **लघुरिक्थ** एक तरह का **लघुरिक्थ** ही है। जौँ र = $१०^{७}$ तो **नेपिअर** का **लघुरिक्थ** शून्य होगा याने **नेपिअर** के मत

से त्रिज्या $१०^{७}$ का **लघुरिक्थ** शून्य है। **नेपिअर** को यह नहीँ मालूम हुआ कि मेरा **लघुरिक्थ** किस आधार (*base*) मेँ है। ऊपर दिखाए हुए प्रकार से **नेपिअर** ने ९०° के भीतर एक एक कला की बढती से सब कलाओँ की **जीवा** और **स्पर्शरेखा** के लघुरिक्थोँ की एक **सारणी** बनाई थी।

जौँ र = $१०^{१}$, $१०^{२}$, $१०^{३}$,···, $१०^{७}$, यह गुणोत्तर श्रेढी मेँ हो तो **नेपिअर** का **लघुरिक्थ**

= $२०^{७}$ × म (६, ५, ४,···) एक अंतर श्रेढी मेँ होगा। १० आधार के **लघुरिक्थ** को जिस स्थिरसंख्या से गुण देने से इ (*e*) आधार का **लघुरिक्थ** होता है उस स्थिर का मान = म है।

बहुतोँ का मत है कि आज कल प्रचलित **लघुरिक्थ** का **मूल-पुरुष बर्गी** (*Bürgi*) है। इस का ग्रंथ **नेपिअर** के ग्रंथ से बहुत पीछे प्रकाशित हुआ इस से **यूरप** मेँ **लघुरिक्थ** निकालने का आदर **नेपिअर ही** को मिला।

नेपिअर ने **त्रिकोणमिति संबंधि जीवा** कोटिज्या··· की **लघुरिक्थ-सारणी बनाई** पर **बर्गी** ने सब **साधारण संख्याओँ** के **लघुरिक्थ** के लिये **सारणी लिखी**।

बर्गी ने दो श्रेढीओँ को दिखाया—

पहली **लघुरिक्थ** की, ०, १, २, ३,···

और दूसरी **संख्याओँ** की, १, $२^{१}$, $२^{२}$, $२^{३}$,···

उस ने यह भी सोचा कि जौँ १० आधार माना जाय तो **दूसरी श्रेढी** की संख्याओँ मेँ बडा सुभीता होगा।

बहुत लोगोँ का मत है कि पीछे से **नेपिअर** को भी १० आधार सूझा था पर **आयु पूरी** हो जाने से वे आगे कुछ न कर सके।

बर्गी की गुणोत्तर श्रेढी की **पोथी** (*Geometrische Progress Tabulen*) मेँ जो सन् १६२० ई. मेँ **प्रेग**

(*Prague*) में प्रकाशित हुई, उस में १०८ से १०९ तक संख्याओं के **लघुरिक्थ** लिखे हैं। **बर्गी** ने संख्याओं के **लघुरिक्थों** को **लाल संख्या** (*Red Numbers*) और संख्याओं को **काली संख्या** लिखी है।

हेनरी ब्रिग्ज (*Henry Briggs*) **नेपिअर** के समय सन् १५९४ ई. में **लंडन** के **ग्रेशम** (*Gresham*) **कालेज** में **रेखागणित** के प्रोफेसर थे और पीछे से **आक्स-फोर्ड** (*Oxford*) में भी सन् १६१९ में **प्रोफेसर** हुए थे। ये **नेपिअर** के ग्रंथ को देख कर **चकित** हो गए। अपना सब काम छोड कर **लंडन** से **नेपिअर** के मिलने के लिये **स्काटल्यांड** चले जिस की खबर **नेपिअर** को भी मिल चुकी थी। **ब्रिग्ज** को राह में देर हो गई, विलम्ब होने से **नेपिअर** घबडा कर एक अपने मित्र से कहने लगा कि हा! जान पडता है कि **ब्रिग्ज** न आवेगा। उसी समय दरवाजे पर खडखडाहट की आवाज आई। दरवाजा खोलने पर **ब्रिग्ज** झट **नेपिअर** से मिला। पंद्रह मिनट तक दोनों **चुपचाप** खुशी के मारे एक दूसरे को **देखते** रह गए। अंत में **ब्रिग्ज** ने कहा कि मेरे **लार्ड**! मैं इतनी दूर से सिर्फ आप के **देखने** और इस **लघुरिक्थ** के गणित के लिये आप को **धन्यवाद** देने आया; **धन्य** आप की बुद्धि जिसने इस **अद्भुत गणित** का पता लगाया। फिर **ब्रिग्ज** और **नेपिअर** में इस **लघुरिक्थ** के ऊपर बहुत बात चीत हुई।

ब्रिग्ज सन् १५५६ ई. में **ह्यालिफाक्स** (*Halifax*) के नगीच पैदा हुए थे और **क्यांब्रिज् जान्सकालेज** (*St john's College*) में पढ़े थे। इन का जीवनचरित **वार्ड** (*j. Ward*) **साहब ने सन् १६४० ई. में छापा है।** ये सन् १६३० ई. के जनवरी की २६ ताः को मरे।

इन्हों ने **नेपिअर** की **लघुरिक्थसारणी** सीख कर

प्रकाश किया कि जौं सब संख्याओं के **लघुरिक्थ १०** आधार में बनाए जायँ तो गणित में बडा लाघव हो। फिर इन्हों ने ला १ = ० और ला १० = १ मान कर १ — २०००० के और ९०००० — १००००० के **लघुरिक्थ** १४ दशमलव स्थान तक बनाए।

बीच की छूटी हुई संख्याओं के **लघुरिक्थ** एक **किताब** बेचनेवाले **हालेंड** के **गौडा** (*Gouda*) स्थान के **आड्रिअन् व्ल्याक** (*Adrian Vlacq*) ने पूरे किए। **व्ल्याक** ने उस **सारणी** में लिखा है कि मेरे मित्र **ड डेकर** (*De Decker*) ने इसे पूरी की है।

सब से पहले **ब्रिग्ज** के साथी **गुंटर** (*Gunter*) ने सन् १६२० ई. में एक एक **कला** की **जीवा** और **स्पर्शरेखा** के **लघुरिक्थ**, ७ दशमलवस्थान तक बनाए। इसी ने सब से पहले *Cosine* **(कोटिज्या)** और *Cotangent* **(कोटिस्पर्शरेखा)** नाम रक्खा है।

पीछे से **ब्रिग्ज** (*Briggs*) ने **व्ल्याक** और **गेलि-ब्रयांड** (*Gellibrand*) की मदद से एक दूसरी **सारणी** बनाई जिस में **जीवाओं** के **लघुरिक्थ** १४ **दशमलव** स्थान तक और **स्पर्शरेखा** और छेदनरेखा के **लघुरिक्थ** १० दशमलव स्थान तक हैं। यह **सारणी ब्रिग्ज** के सन् १६३१ ई. में मरने के बाद स. १६३३ ई. में छपी।

इस में **छत्तिस छत्तिस** विकला की वृद्धि से **जीवा, स्पर्शरेखा,**··· के **लघुरिक्थ** लिखे हैं। **सत्रहवीं** सदी के अंत में **क्लयास वूट** (*Claas Vooght*) ने **लघुरिक्थ** के साथ साथ **जीवा, स्पर्शरेखा** और **छेदनरेखा** की भी एक **सारणी** प्रकाश की। इस में विशेष बात यह थी कि सब अंक **तामे** के **पत्तर** पर खोद दिए गए थे।

यूरप में **लघुरिक्थ** सारणिओं का बहुत प्रचार हो गया। सन् १८७५ ई. में इन सारिणिओं की संख्याएँ ५५३ थीं जिन में **दशमलव** स्थानों की संख्या ३ से १०२ तक हैं।

आज कल व्यवहार में काम लायक ७ **दशमलव** स्थान तक की **सारणी** अच्छी समझी जाती हैं।

जिस **सारणी** में १०२ दशमलव स्थान हैं उसे **पर्खर्स्ट** (*H. M. Parkhurst*) ने **न्यूयार्क** में सन् १८७१ ई. में **सिद्धान्त-सारणी** (*Astronomical Tables*) के नाम से छपवाया है।

पीछे के **गणक** लोग इन सारणिओं की अशुद्धिओं को पता लगा लगा कर शुद्ध करते आए हैं।

जो **ब्रिग्ज** (*Briggs*) की सारणी स. १६२४ ई. में बनी और स. १६२८ ई. में छपी जिस में १ — १००००० के लघुरिक्थ १० दशमलवस्थान तक लिखे हैं उस में **ग्ल्यैशर** (*Glaisher*) ने पहले **सात** दशमलवस्थानों में १७१ अशुद्धिआँ पाई थी जिन में ४८, १ — १०००० के **लघुरिक्थों** में थीं।

व्ल्याक (*Vlacq*) ने धीरे धीरे सभी को शुद्ध किया।

न्यूटन ने **व्ल्याक** की सोधी सारणी में सन् १६५८ ई. में ९८ **गार्डिनर** (*Gardiner*) ने सन् १७४२ ई. में १९ **वेगा** (*Vega*) ने सन् १७९७ ई. में ५ **क्यालेट** (*Callet*) ने सन्. १८५५ ई. में २ और **स्यांग** (*Sang*) ने सन् १८७१ ई. में २ अशुद्धिआँ पाई। **ग्ल्यैशर** (*Glaisher*) ने अच्छी तरह से जाँच कर ठीक किया कि **ब्रेमिकर** (*Bremiker*) की सन् १८५७ ई. की छपी **स्कार्न** (*Schrön*) की सन् १८६० ई. की छपी, **क्यालेट** (*Callet*) की

सन् १८६२ ई. की छपी और **ब्रह्स** (*Bruhns*) की सन् १८७० ई. की छपी सारणिओं में एक भी अशुद्धि नहीं पाई गई।

सब से पहले **जान स्पिडेल** (*John speidell*) ने अपने नए **लघुरिक्थ** (*New Logarithms*) नाम के ग्रंथ में **जीवा, स्पर्शरेखा** और **छेदनरेखा** के **लघुरिक्थ** इ (*e*) आधार में प्रकाश किए।

ज्यौतिषिओं को इस **लघुरिक्थ** की **सारणिओं** से बहुत ही सुभीता हो गया। भारी से भारी **गुणन, भजन, वर्ग, वर्गमूल,** ··· बात की बात में हो जाते हैं।

हिंदुस्तान में यद्यपि **लघुरिक्थ** की चर्चा किसी पुराने ग्रंथों में नहीं पाई जाती तौ भी परंपरा से बहुत पुराने समय से "एक रत्ती हीरे का मोल १०० रु० है तो चार रत्ती हीरे का क्या मोल होगा जहाँ यह शर्त है कि सवाई तोल चौगुना मोल" यह प्रश्न चला आता है जिसका उत्तर **लघुरिक्थ** ही से निकलता है।

और **लघुरिक्थ** की बातें **बीजगणित** के वर्णन में लिखी जायँगी।

गिनती में वैज्ञानिकों का विशेष विचार।

(१) सब से पहले संसार के पदार्थों को, जो कि आँख से देख पडते हैं, गिनने के लिये आदमिओं के मन में साधारण **अंकों** का अनुभव हुआ होगा फिर उन्हीं के आधार से मन में सोचे हुए पदार्थों के **गिनने** में भी लोग **काबिल** हुए होंगे।

एक **गाय** के देखने से जो कुछ समझ पडता है उस से दूना दो **गाय** के देखने से समझ पडता है। इसी तरह तीन, चार, ··· **गायों** के देखने से एक **गाय** के ज्ञान से तीन, चार, ··· गुना ज्ञान होगा।

जैसे चार **गाय** देखने में आईं तो ४ को एक **गाय जाति** का समुदाय कहेंगे। इसी तरह ४ **पैसे** का समुदाय एक आना **है**। **एक** आने का जौं **गिनने** में एक मान लें तो कहेंगे कि एक आने के सोरह **समुदाय** का एक रुपया होगा।

इस तरह सब **साधारण** संख्याएँ अपने अपने एक के **समुदाय हैं** और सब **समुदाय** के तत्त्व उन के एक हैं।

जौं **छब्बीस गाही** आम को एक सैकडा कहो तो कहेंगे कि एक सैकडे में २६ तत्त्व और एक गाही में **५ तत्त्व हैं**।

(२) **तत्त्वों** की गिनती से मन को यह ज्ञान हो जाता है कि यह **समुदाय** दूसरे **समुदाय से बडा, बराबर** या **छोटा** है। इस लिये **गिनती** की क्रिया में **समुदाय** के जानने की जरूरत है, अगर वह क्रिया आगे जाकर खतम हो जाय या खतम हो जाने का पक्का **ज्ञान** हो तो।

यह समझ रक्खो कि किसी **समुदाय के गिनने में** उस के **तत्त्व** एक दूसरे से अलग अलग मौजूद रहते हैं ऐसा नहीं होता कि किसी का **लोप** हो जाय या कई एक आपस में **मिल-जायँ**। **तोप** की **आवाज** की गिनती में दूसरी **गिनती शुरू** होते ही पहली **आवाज** का लोप हो जाता है पर **गिननेवाले** के मन में वह पहली **आवाज** मौजूद रहती है।

(३) किसी चीज के **समुदाय** की गिनती में एक तत्त्व के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा,··· क्रम से आते हैं इस लिये किसी **समुदाय** को **क्रमिक समुदाय** कह सकते हैं।

पहले **तत्त्व** को दूसरे **तत्त्व** के वश से **छोटे दर्जे** का और दूसरे को पहले के वश से **बडे दर्जे** का कह सकते हैं।

(४) एक **समुदाय** का निश्चित तत्त्व दूसरे **समुदाय** के जिस निश्चित तत्त्व से बराबरी करता है उसे **जोडी का तत्त्व** कहते हैं।

जौं एक **समुदाय** में कोई ऐसा **तत्त्व** न हो जो दूसरे **समुदाय** के किसी **तत्त्व** का बराबरी कर सके तो कहेंगे कि दोनों **समुदायों** में एक ऐसा समुदाय है जिस में दूसरे के **हिसाब** से बहुत अधिक **तत्त्व हैं**।

इस तरह से **एक, समुदाय, क्रम** और **जोडी,** ये चार **मुख्य पदार्थ हैं** जो कि सब से पहले **अज्ञानी मनुष्यों** के मन में **गिनती करने** के लिये पैदा हुए फिर इन्हीं **चारो मूल पदार्थों** पर से **ज्ञानी लोग** अनेक पदार्थों का पता लगा चुके और आगे भी लगाते चले जाते हैं।

(५) जौं एक **क्रमिक समुदाय** में से कुछ तत्त्व हटा दिए जायँ तो बाकी **समुदाय** पहले **समुदाय** का एक भाग कहा जायगा।

जौं नीचे लिखे हुए धर्म पाए जायँ तो **क्रमिक समुदाय** को परिच्छिन्न कहेंगे।

(अ) जिस में एक ऐसा तत्त्व हो जो और किसी तत्त्वों से **छोटे दर्जे** का हो।

(क) जिस में एक ऐसा तत्त्व हो जो और किसी तत्त्वों से **बडे दर्जे** का हो।

(ख) जिस के किसी भाग में एक तत्त्व ऐसा हो जो उस भाग के और किसी तत्त्व से **छोटे दर्जे** का हो और एक ऐसा भी तत्त्व हो जो इस भाग के और किसी तत्त्व से **बडे दर्जे** का हो।

इन से यह सिद्ध होता है कि **परिच्छन्न समुदाय** और इस के कोई भाग के आदि में एक और अंत में एक तत्त्व रहेगा।

परिच्छिन्न क्रमिक समुदाय का हर एक भाग भी एक **क्रमिक समुदाय** होगा।

जौं **मा समुदाय** का **मा$_{१}$ भाग** मानो तो **मा$_{१}$** में सब से **बडे** और सब से **छोटे दर्जे** का एक एक तत्त्व रहेगा और **मा$_{१}$** के हर एक भाग में **मा** का भी भाग होने से एक सब से **छोटे दर्जे** का और एक सब से **बडे दर्जे** का तत्त्व रहेगा इसलिये **मा$_{१}$** आप एक **परिच्छिन्न समुदाय** होगा।

(६) जिन में पूरे तौर से **जोडी के तत्त्व** हों ऐसे दो **परिच्छिन्न क्रमिक समुदाय सजातीय** कहे जाते हैं याने जौं एक के एक एक तत्त्व दूसरे के एक एक तत्त्व के **जोडी** के हों ऐसा कि एक के कोई दो **'पा' 'का'** तत्त्व दूसरे के कोई **'पा'' 'का''** तत्त्व के **जोडी** के हों और जौं **पा, का से छोटे दर्जे** का हो तो **पा'**, भी **का'** से **छोटे दर्जे** का हो और जौं **पा का से बडे दर्जे** का हो तो **पा'** भी **का'** से **बडे दर्जे** का हो तो दोनों **समुदाय सजातीय** कहे जायँगे।

इस से सिद्ध होता है कि दो **सजातीय परिच्छिन्न क्रमिक समुदायों** में एक ही साधारण संख्या है।

जौं दो **क्रमिक** समुदायों में हर एक तीसरे **समुदाय** का सजातीय हो तो वे दोनों आपस में भी सजातीय हों गे। इस की उपपत्ति बहुत सहज है।

इस से सिद्ध होता है कि **सजातीय क्रमिक समुदायों** में कोई एक ही **नियत साधारण संख्या** स्थिर रहती है।

(अ) जिस समुदाय में एक ही तत्त्व **आ** है उस में **नियत साधारण संख्या एक** है जिसे १ इसे चिह्न से प्रकाश करते हैं। इस से सिद्ध है कि जिन समुदायों में एक ही तत्त्व है सब में नियत संख्या १ है। इसी में जौं एक नया तत्त्व **'का'** मिला दें तो नया **समुदाय** (आ, का) होगा जहाँ आ तत्त्व से **का** का दर्जा ऊँचा है याने दर्जे में आ **छोटा** और का **बडा** है

तो (आ, का) **समुदाय** में नियत संख्या २ होगी।

इस में फिर **तीसरा** तत्त्व **गा** दोनों से ऊँचे दर्जे का मिलावें तो (आ, का, गा) **समुदाय** में नियत संख्या ३ होगी। इस तरह से (आ, का, गा, ···, जा) इस समुदाय में नियत संख्या **न** कहो और एक तत्त्व सब से **ऊँचे दर्जे** का **झा** इस में मिलाओ तो (आ, का, गा, ···, जा, झा) समुदाय में जौं नियत संख्या **नं** हो तो साफ है कि **न** से भिन्न **नं** है।

इस तरह से जितने **क्रमिक समुदाय** बनेंगे सब परिच्छिन्न होंगे।

इस की उपपत्ति। मानो कि एक **परिच्छिन्न क्रमिक समुदाय मा** है तो **मा** के सब तत्त्वों से एक **ऊँचे दर्जे** का तत्त्व **त** मिलाने से नया (मा, त) यह **समुदाय** भी **परिच्छिन्न क्रमिक समुदाय** होगा क्योंकि **मा** में सब से **छोटे दर्जे** का एक तत्त्व है, वही (मा, त) में भी सब से **छोटे दर्जे** का है और (मा, त) में सब से **बडे दर्जे** का **त** तत्त्व है।

फिर मानो कि **मा$_{१}$** एक (मा, त) का ऐसा भाग है जिस में **त** नहीं है तो **मा$_{१}$ मा** का एक भाग होगा इसलिये इस में एक सब से **छोटे दर्जे** का और एक सब से **बडे दर्जे** का तत्त्व होगा। जौं **मा$_{१}$** में **त** तत्त्व हो तो मानो कि मा$_{१}$=(मा$_{२}$, त) जहाँ **मा$_{२}$ मा** का कोई भाग है इसलिये **मा$_{२}$ परिच्छिन्न क्रमिक समुदाय** होगा। इसलिये इस में एक सब से **छोटे दर्जे** का तत्त्व होगा और सब से **बडे दर्जे** का तत्त्व **त** तो है ही इसलिये पिछले सिद्धान्तों से (मा, त) **परिच्छिन्न क्रमिक समुदाय** हुआ।

(आ) और (आ, का) साफ है कि **परिच्छिन्न क्रमिक समुदाय** हैं इसलिये **अनुगम** से (आ, का, गा) भी **परि-**

च्छिन्न क्रमिक समुदाय हुआ। इस तरह आगे के सब **समुदाय परिच्छिन्न** क्रमिक समुदाय होंगे। इस से सिद्ध होता है कि एक **क्रमिक समुदाय** में जिस में एक तत्त्व है एक एक नए तत्त्व के मिलाने से जितने समुदाय होंगे सब **परिच्छिन्न क्रमिक समुदाय** होते जायँगे।

इस की उलटी क्रिया से यह सिद्ध कर सकते हो कि कोई **परिच्छिन्न क्रमिक समुदाय** में एक एक तत्त्व के घटाते घटाते अंत में एक ऐसा **समुदाय** होगा जिस में एक ही तत्त्व रहेगा।

कोई **परिच्छिन्न क्रमिक** समुदाय अपने भाग के सजातीय नहीं हो सकता।

इस की उपपत्ति **अनुगम** से इस तरह से होती है। मानो कि एक **मा परिच्छिन्न क्रमिक समुदाय** अपने **भाग** के सजातीय नहीं है तो (मा, त) यह **मा** के सजातीय नहीं होगा। जौं हो तो मानो यह अपने **मा**$_1$ भाग के सजातीय है तो जौं **मा**$_1$ में **त** तत्त्व हो तो यह (मा$_2$, त) इस तरह का होगा और (मा$_2$, त) जौं (मा, त) के **सजातीय** हो तो **मा**$_2$ यह जरूर **मा** के सजातीय होगा जो कि मान लिये गए धर्म से उलटा है क्यों कि **मा** अपने कोई भाग के सजातीय नहीं है ऐसा मान लिया गया था। जौं **मा**$_1$ में **त** तत्त्व न हो तो **मा**$_1$ जरूर [मा$_2$, फ] ऐसा होगा। ऐसी दशा में **फ** का जोडी **त** होगा इसलिये फिर **मा** का सजातीय उस का एक भाग **मा**$_2$ होगा जो मान ली गई बात से उलटा है। [आ, का], अपने भाग [आ] के सजातीय नहीं है इसलिये ऊपर की युक्ति से [आ, का, गा] यह भी अपने भाग का **सजातीय** नहीं है। इस तरह [आ, का, गा,⋯] ये सब **समुदाय** अपने पिछले **समुदायों** के सजातीय नहीं हैं। तब [आ],

(आ, का),⋯ ये सब एक से एक भिन्न हैं इसलिये इन की नियत संख्याएँ १, २, ३,⋯ भी सब एक से एक भिन्न हैं यह सिद्ध हुआ। इसलिये १, २, ३,⋯ सब **साधारण संख्याएँ** आपस में जुदी जुदी और **खाली चीज** हैं।

जैसा **नीला** रंग और **नीले घडे** में संबंध है उसी तरह का संबंध **साधारण संख्या** और उस संबंधी **पदार्थ** में है।

(७) **परिच्छिन्न** और बढता हुआ **समुदाय** वह **क्रमिक समुदाय है** जिस में और सब तत्त्वों से **ऊँचे दर्जे** का कोई तत्त्व न हो और वह **समुदाय** इस तरह का भी है जिस का कोई **भाग,** जिस में एक तत्त्व उस भाग के और सब तत्त्वों से **ऊँचे दर्जे** का है, **परिच्छिन्न क्रमिक समुदाय** है।

इस से यह भी सिद्ध होता है कि **अपरिच्छिन्न क्रमिक समुदाय** में एक तत्त्व और तत्त्वों से **छोटे दर्जे** का है उस के किसी भाग में भी एक **तत्त्व** उस भाग के और तत्त्वों से **छोटे दर्जे** का है।

परिच्छिन्न क्रमिक समुदाय और **अपरिच्छिन्न क्रमिक समुदाय** का अंतर रूप **समुदाय** में ऊपर की युक्ति से कोई तत्त्व और दूसरे तत्त्वों से **ऊँचे दर्जे** का नहीं है इस लिये अंतर रूप **समुदाय** भी **अपरिच्छिन्न क्रमिक समुदाय** है।

(८) जौं कोई **परिच्छिन्न क्रमिक समुदाय** किसी तरह से तत्त्वों के उलट पलट देने से फिर एक नया **क्रमिक समुदाय** बनाया जाय तो यह नया **समुदाय परिच्छिन्न** होगा और इस की **नियत संख्या** वही होगी जो कि पहले **समुदाय** की है।

इस की उपपत्ति के लिये पहले मानो कि **भा** यह एक **परिच्छिन्न क्रमिक समुदाय** है इस में सब तत्त्वों से **ऊँचे दर्जे**

का एक तत्त्व मिला देने से (भा, त) यह **समुदाय** (त, भा) इस समुदाय से जहाँ त सब से **छोटे दर्जे** का है, **सजातीय** होगा, यह सिद्ध करना है।

मानो कि भा ≡ (भा$_१$, फ) और यह भी मानो कि ऊपर का सिद्धान्त **भा$_१$** में ठीक है याने (भा$_१$, त), (त, भा$_१$) के **सजातीय है** तो इन दोनों में पूरे तौर से **जोडी के तत्त्व** होंगे इस लिये (भा$_१$, त, फ) और (त, भा$_१$, फ) में भी **जोडी के तत्त्व** होंगे। (भा$_१$, त, फ) और (भा$_१$, फ, त) ये दोनों **सजातीय** होंगे क्योंकि **भा$_१$** तो दोनों में एक ही है, त और फ क्रम से फ और त के **जोडी** तत्त्व हैं इस लिये

(भा$_१$, फ, त) यह (त, भा$_१$, फ) के **सजातीय** हुआ याने (भा, त) के सजातीय (त, भा) हुआ इस लिये ऊपर का सिद्धान्त ठीक हुआ जौं भा ≡ (भा$_१$, फ) में **भा$_१$** में वह नियम हो तो। पर **भा$_१$** में एक तत्त्व हो तो सिद्धान्त ठीक है इस लिये **अनुगम** से **परिच्छिन्न क्रमिक भा समुदाय** में भी ऊपर का सिद्धान्त ठीक हुआ।

इस सिद्धान्त की **सर्वसाधारण** दशा में सिद्ध करने के लिये मानो कि **मा समुदाय** में सिद्धान्त ठीक है तो (मा, त) इस में भी ठीक होगा। इस के लिये कल्पना करो कि **मा** के तत्त्वों के उलट पलट करने से नया क्रमिक समुदाय (रा, त, सा) ऐसा हुआ। तो (रा, त, सा), (रा, सा, त) के सजातीय होगा क्योंकि रा तो दोनों में एक ही है इस लिये इन में **जोडी के** तत्त्व रहें ही गें और ऊपर की युक्ति से (त, सा) और (सा, त) सजातीय हैं। **मा** को मान लिया है कि (रा, सा) के **सजातीय** है इस से सिद्ध हुआ कि (रा, सा, त), (मा, त) के **सजातीय** है इस लिये (रा, ता, सा) भी (मा, त) के **सजातीय** हुआ। साफ है कि (आ, का) **समुदाय** में सिद्धान्त ठीक है जहाँ कि दोही

तत्त्व हैं इस लिये **अनुगम** से हर एक **परिच्छिन्न क्रमिक समुदाय** में यह सिद्धान्त सच्चा हुआ।

इस सिद्धान्त से सिद्ध होता है कि किसी **समुदाय में**, जिस में तत्त्वों के उलट पलट करने से एक **परिच्छिन्न क्रमिक समुदाय** बनता हो, साधारण नियत संख्या **स्वतंत्र** एक ही रहती है चाहे उस **समुदाय** में तत्त्वों का क्रम कैसा ही हो।

पूरे अंकों का परिकर्म।

(९) जौं दो परिच्छिन्न क्रमिक समुदाय **आ** और **का** हों जिन की **नियत** संख्या क्रम से **अ** और **क** हैं तो जौं इन दोनों के योग से एक **समुदाय** बनाना हो जिस में **आ** के सब तत्त्व **का** के सब तत्त्वों से **छोटे दर्जे** के हों और जिस में **आ** के कोई दो तत्त्व और **का** के कोई दो तत्त्व वही क्रम से संबंध रखते हों जो कि पहले **आ** और **का** में संबंध रखते थे तो इस योग-रूप **समुदाय** की साधारण नियत संख्या अ + क होगी।

यह दिखला सकते हो कि यह एक नया समुदाय परिच्छिन्न है और इस की साधारण संख्या एक ही रहेगी जौं **आ** और **का** के स्थान में उन के सजातीय समुदाय रख दें। इस तरह से समझ पडता है कि **योग** अ + क एक **परिच्छिन्न संख्या** है जो खाली अ और क के आधीन है।

(आ, का) समुदाय में सब से **छोटे दर्जे** का तत्त्व वही है जो कि **आ** में सब से **छोटे दर्जे** का है और सब से ऊँचे दर्जे का तत्त्व वही है जो कि **का** में सब से ऊँचे दर्जे का है; और (आ, का) इस का कोई भाग (आ', का') ऐसा होगा जहाँ आ' और का' क्रम से आ और का के कोई भाग हैं या उस भाग में आ' और का' में से कोई एक भाग रहेगा।

और आ, का दोनों में एक सब से **छोटा** और एक सब से **बडा** तत्त्व है इस लिये (आ, का) के कोई ऊपर के ऐसे भाग में एक तत्त्व सब से **छोटा** और एक सब से **बडा** रहेगा। इस तरह (आ, का) **परिच्छिन्न** है।

फिर आ$_{१}$, का$_{१}$ जौं क्रम से आ, का के **सजातीय** हों तो **आ** के हर एक तत्त्व को **आ**$_{१}$ के उस के **जोडी** तत्त्व के स्थान में और **का** के हर एक तत्त्व को **का**$_{१}$ के उस के **जोडी** तत्त्व के स्थान में रख सकते हैं। ऐसा करने से (आ,का) और (आ$_{१}$,का$_{१}$) के तत्त्वों के बीच एक **जोडी तत्त्व** (१, १) ऐसा होगा। इस लिये (आ, का) की साधारण नियत संख्या वही है जो कि (आ$_{१}$, का$_{१}$) इस की है।

(आ, का) और (का, आ) में **साधारण नियत संख्या** एक ही है इस लिये अ+क=क+अ जो कि जोडने की क्रिया से प्रसिद्ध है।

ध्यान दे कर सोचो तो साधारण संख्या का कुछ भी अर्थ नहीं है जब तक कि उस से कोई **समुदाय** न दिखाया जाय। इस लिये जब तक दो, तीन, ··· **समुदाय** न जोडे जायँगे तब तक साधारण संख्याओं के **योग** का भी कुछ अर्थ नहीं है।

(१०) एक **परिच्छिन्न समुदाय** मान में जिस की संख्या 'क' है, जौं हर एक तत्त्व के स्थान में एक दूसरा **परिच्छिन्न समुदाय** जिस की संख्या **'अ'** है, रख दिया जाय तो इस तरह से बने हुए **नए समुदाय** की संख्या को **अ** से गुणित **क** का गुणनफल कहते हैं और यह **अ, क** इस से दिखाया जाता है।

ऊपर की युक्तियों से प्रसिद्ध है कि वह नया **समुदाय परिच्छिन्न** होगा और उस के स्थान में उस के **सजातीय समुदायों** के रख देने से उस की संख्या ज्यों की त्यों रहेगी। इस लिये **अ.क** भी परिच्छिन्न होगा।

यह प्रसिद्ध है कि अ·क=अ+अ+अ+··· क स्थान तक।

जो नया बना क्रमिक समुदाय है उस में तत्त्वों के **क्रम** इस तरह से बदल दें कि जिन **समुदायों** की संख्या **अ** है सभों में से पहला पहला तत्त्व ले कर एक, दूसरा दूसरा तत्त्व लेकर दूसरा, इस **तरह** से **समुदाएँ** बना कर उन को क्रम से रख दें तो ऐसा एक **समुदाय** बनेगा जिस की संख्या **अ** है और जिस के हर एक तत्त्व के स्थान में वह समुदाय रक्खा गया है जिस की संख्या **क** है। इस नए **समुदाय** की संख्या क·अ होगी और इस की संख्या पहले समुदाय की संख्या के बराबर होने से क·अ=अ·क जो कि गुणने की क्रिया से प्रसिद्ध है।

जौं **अ** और **क** संख्या का **योग** ग संख्या हो तो **ग** में से **क** को अलग कर लेने से **अ** रह जायगा। ऐसी दशा में कहेंगे कि **योगक्रिया** से **घटाने** की क्रिया उलटी है। जौं ग=अ+क तो अ=ग−क, क्योंकि (ग−क)+क=ग। इस से सिद्ध होता है कि **घटाने** का कर्म तभी तक संभव है जब तक ग>क।

जो दो संख्याओं (अ, क) का गुणनफल **ग** संख्या हो तो **अ** का ज्ञान **ग** और **क** के ज्ञान से होता है। ऐसी स्थिति में **ग** को **क** से भाग देने से **अ** आवेगा और कहेंगे कि **गुणन-क्रिया** से **भाग-क्रिया** उलटी है। इस से सिद्ध होता है कि ग=क, २क, ३क,··· ऐसा ही होगा तभी भाग-क्रिया की संभावना है।

भिन्न संख्या।

ऊपर दिखा आए हैं कि पूरी दो संख्याओं का **गुणनफल** सदा **संभव** है पर भाग तभी **संभव** है जब भाज्य में पूरा पूरा भाजक पूरी लब्धि बार घट जाय। पुराने लोगों को हिस्सा बाटने में

जब **भाजक** पूरा पूरा भाज्य में न **घटा** होगा तब बडी दिक्कत पडी होगी। उस को मिटाने के लिये पूरे अंकों के **हिस्से** करने की **क्रिया** मन में आई होगी फिर उन हिस्सों के **जोडने, घटाने, गुणने** और **भाग लेने** की क्रिया भी सोची गई होगी।

नैयायिकों के मत से, जहाँ **समुदाय** पर से पूरे अंकों के **योग, अंतर,**… ऊपर दिखा आए हैं, भिन्न संख्या, संख्या की गिनती में नहीं है पर **गणक लोग** भिन्न में भी **जोडना, घटाना,**… वैसे ही करने लगे जैसे कि पूरी संख्या में करते हैं इस लिये इस को भी भिन्न-संख्या के नाम से पुकारने लगे। $\frac{अ}{क}$ से यह समझा जाता है कि किसी जाति के एक का बरावर **क** हिस्सा किया गया है और वैसे वैसे **अ** हिस्से लि गएए हैं।

आज कल के **वैज्ञानिक** लोग **भिन्न** संख्या को (अ, क) ऐसे लिखते हैं जिसे गणक $\frac{अ}{क}$ इस संकेत से लिखते हैं।

मैं इस छोटी सी पोथी में **गणित** का इतिहास लिखने बैठा हूँ इस लिये नए मत का कुछ वर्णन कर दिया। जिस को सब बातें जानने की इच्छा हो वह **हाब्सन** (*E. W. Hobson*) साहब की बनाई सन् १९०७ की छपी **वास्तव चल के फलों के सिद्धान्त** (*The Theory of Functions of A real variable*) को देखे। अब **ज्ञानी** लोग अपनी बुद्धि के प्रभाव से चाहे जो तरङ्ग निकालें पर वही **मूल पुरुष धन्य** है जिसने इन **अंकों** की सूरत और दशगुने **स्थान** बनाए।

वैदिक परिभाषा और गणित।

आज कल जो ८ यव का अंगुल, २४ अंगुल का **हाथ,**… **परिभाषाएँ** हैं उन से और **वैदिकपरिभाषाओं** से भेद है।

बोधायन महर्षि अपने **शुल्बसूत्र** में अंगुल का लक्षण लिखते हैं—

चतुर्दशाणवः। चतुस्त्रिंशत्तिलाः पृथुसंश्लिष्टा इत्यपरम्।

अणु छोटे अन्न साँवा, काँक, सरसो, … को कहते हैं। चौदह अणु अन्न या चौंतीस **तिल** की लंबाई की ओर मिला कर रखने से एक **अंगुल** होता है।

दशाङ्गुलं क्षुद्रपदम्। द्वादश प्रादेशः।

दश अंगुल का एक **छोटा पैर** और बारह अंगुल का **प्रादेश** होता है। अंगूठा और पहली अंगुली को फैलाने से जो अंतर हो उसे **प्रादेश** कहते हैं।

अष्टाशीतिशतमीषा। चतुःशतमक्षः। षडशीतिर्युगम्।

११८ अंगुल की **ईषा,** ४०० अंगुल का **अक्ष** और ८६ अंगुल का **युग** होता है। गाडी में जो लंबी लकडी रहती है उसे **ईषा, धुरी** को **अक्ष** और **जूए** को, जिस में दोनों बैल जुटे रहते हैं, **युग** कहते हैं।

द्वात्रिंशज्जानुः। षट्त्रिंशच्छम्याबाहू। द्विपदः प्रक्रमः। द्वौ प्रादेशावरत्निः।

३२ अंगुल की **जाँघ,** ३६ अंगुल की **शम्या** और **बाहु,** दो पैर (२० अंगुल) का **एक प्रक्रम** और दो प्रादेश (२४ अंगुल) का एक **अरत्नि** (हाथ) होता है।

पञ्चारत्निः पुरुषः।

पाँच अरत्नि (१२० अंगुल) का **एक पुरुष (पोरिसा)** होता है।

पुराने समय में **बोधायन** ने भी नापने में **पैर** (*Foot*) को लिया है जैसा कि आज कल **यूरप** के लोग **फुट** को लेते हैं।

बोधायन अपने **शुल्बसूत्र** के ४७वें सूत्र में लिखते हैं कि—

प्रमाणं द्वादशाङ्गुलं तिर्यक्। तस्य द्विकरणी तिलोनसप्तदशाङ्गुला पार्श्वमानी। एवंभूतस्य दीर्घचतुरस्रस्याक्ष्णया रज्जुर्विंशतिरङ्गुलयः सप्तविंशतिस्तिलाश्च। सा त्रिकरणी प्रमाणविमितक्षेत्रं त्रिगुणं क्षेत्रं करोति। तृतीयकरण्येतेन व्यख्याता नवमस्तु भूमेर्भागो भवतीति।

एक बारह अंगुल प्रमाण की **तिरछी रेखा** करो उस के एक प्रान्त पर एक तिल कम सत्रह अंगुल की **पार्श्वमानी** याने लंबरूप दूसरी (**कोटि**) रेखा करो। इन दोनों से बने **लंबे आयत का कर्ण** (**अक्ष्णया रज्जु**) बीस अंगुल और सत्ताइस तिल होता है। वह **त्रिकरणी** (पहले वर्गक्षेत्र के तिगुने वर्गक्षेत्र का भुज) है, उस से बना **वर्गक्षेत्र** (पहले वर्ग-) क्षेत्र का तिगुना (वर्ग-) **क्षेत्र** बनाता है। इस की **तृतीय करणी** (भुज के तीसरे हिस्से को भुज मान कर बना वर्गक्षेत्र) पहले वर्ग के **नवें** हिस्से के बराबर होती है।

यहाँ पहले वर्गक्षेत्र का कर्ण $=\sqrt{\text{२ भु}^{२}}=\sqrt{\text{२८८}}=\sqrt{\text{२८९}-\text{१}}$ $=\text{१७}-\frac{\text{१}}{\text{२}\times\text{१७}}=\text{१७}-\frac{\text{१}}{\text{३४}}=$ १७ अंगुल – एक तिल, खल्पान्तर से। और १२ और $\sqrt{\text{२८८}}$ भुज – कोटि पर से कर्ण $=\sqrt{\text{भु}^{२}+\text{को}^{२}}=\sqrt{\text{१४४}+\text{२८८}}=\sqrt{\text{३ भु}^{२}}=$

$$\sqrt{\text{४३२}}=(\text{४००}+\text{३२})^{\frac{\text{१}}{\text{२}}}=\text{२०}+\frac{\text{३२}}{\text{४०}}=\text{२०}+\frac{\text{४}}{\text{५}}$$

$=\text{२० अं.}+\frac{\text{४}\times\text{३४}}{\text{५}}\text{ ति.}=\text{२० अं.}+\frac{\text{१३६}}{\text{५}}\text{ ति.}=\text{२० अं.}+\text{२७}\frac{\text{१}}{\text{५}}\text{ ति.}$
$=$ २० अं + २७ तिल, खल्वान्तर से **बोधायन** की क्रिया से ठीक है।

बोधायन आगे अपने **शुल्बसूत्र** के ६१–६२ वें सूत्रों

में ऊपर लिखे हुए प्रकार के ऊपर विशेष लिखते हैं।

प्रमाणं तृतीयेन वर्धयेत् तच्च चतुर्थेनात्मचतुस्त्रिंशोनेन ॥ ६१ ॥

द्वादशाङ्गुलं चतुरङ्गुलेन वर्धयेत्। तत्तृतीयस्त्रीयचतुर्थेन स्वचतुस्त्रिंशांशोनेन तिलोनेनैकाङ्गुलेन वर्धयेत्। एवं तिलोनसप्तदशाङ्गुलो भवति। सविशेषः ॥ ६२ ॥

६१ वें सूत्र से **बोधायन** ने $\sqrt{\text{२ भु}^{२}}=\text{भु}\sqrt{\text{२}}$
$=\text{भु}\left(\text{१}+\frac{\text{१}}{\text{३}}+\frac{\text{१}}{\text{३}\cdot\text{४}}-\frac{\text{१}}{\text{३}\cdot\text{४}\cdot\text{३४}}\right)=\text{भु}+\frac{\text{भु}}{\text{३}}+\frac{\text{भु}}{\text{३}\cdot\text{४}}-\frac{\text{भु}}{\text{३}\cdot\text{४}\cdot\text{३४}}$
= **कर्ण**। इस में **भुज** के स्थान में १२ अंगुल रख देने से

$$\textbf{कर्ण}=\sqrt{\text{२भु}^{२}}=\sqrt{\text{२८८}}=\text{१२}+\frac{\text{१२}}{\text{३}}+\frac{\text{१२}}{\text{३}\cdot\text{४}}-\frac{\text{१२}}{\text{३}\cdot\text{४}\cdot\text{३४}}$$
$$=\text{१२}+\text{४}+\text{१}-\frac{\text{१}}{\text{३४}}=\text{१७}-\frac{\text{१}}{\text{३४}}=\text{१७ अं.}-\text{१ तिल।}$$

मैं समझता हूँ कि **बोधायन** ने पहले एक **प्रादेश** याने १२ अंगुल के तिलों ($=\text{१२}\times\text{३४}=\text{४०८}$) को भुज मान कर **तिल** तक सूक्ष्मगणना के लिये **वर्गक्षेत्र** के **कर्ण** को **तिल** में लाए याने

$$\text{कर्ण}=\sqrt{\text{२}\times\text{४०८}^{२}}=\sqrt{\text{२}\times\text{१६६४६४}}=\sqrt{\text{३३२९२८}}$$

= ५७७ खल्पान्तर से, इस में फिर **प्रादेश** बनाने के लिये ४०८ का भाग दे देने से

$\frac{\text{५७७}}{\text{४०८}}=\text{१}+\frac{\text{१६९}}{\text{४०८}}$ यह लाए। फिर $\frac{\text{१६९}}{\text{४०८}}$ इस भिन्न को **अह्मेस** के ऐसा एक अंशवाले भिन्नों के **योगरूप** में लाए। जैसे—

$$\frac{\text{१६९}}{\text{४०८}}=\frac{\text{१६९}}{\text{४०८}}+\frac{\text{१}}{\text{४०८}}-\frac{\text{१}}{\text{४०८}}=\frac{\text{१७०}}{\text{४०८}}-\frac{\text{१}}{\text{४०८}}$$
$$=\frac{\text{१७०}}{\text{१२}\times\text{३४}}-\frac{\text{१}}{\text{१२}\times\text{३४}}=\frac{\text{५}}{\text{१२}}-\frac{\text{१}}{\text{१२}\cdot\text{३४}}$$
$$=\frac{\text{४}}{\text{१२}}+\frac{\text{१}}{\text{१२}}-\frac{\text{१}}{\text{१२}\cdot\text{३४}}=\frac{\text{१}}{\text{३}}+\frac{\text{१}}{\text{३}\cdot\text{४}}-\frac{\text{१}}{\text{३}\cdot\text{४}\cdot\text{३४}}$$ इस लिये

'**भु**' भुज का कर्ण $=\text{भु}\left(\text{१}+\frac{\text{१}}{\text{३}}+\frac{\text{१}}{\text{३}\cdot\text{४}}-\frac{\text{१}}{\text{३}\cdot\text{४}\cdot\text{३४}}\right)$।

बहुत लोगों का मत है कि **बोधायन** को **वर्गमूल** निकालने की **क्रिया** जो ऊपर लिख आए हैं नहीं मालूम थी उन्हों ने **नापने** की **शलाका** से **कर्ण** को नाप लिया था। जौं यह बात हो तो **बोधायन** की नापने की **शलाका (स्केल)** बहुत ही सही और सूक्ष्म थी जिस से **तिल** तक का पता लग गया।

इस ग्रंथ के **रेखागणितवर्णन** के **भाग** में **वैदिक रेखागणित** का विशेष वर्णन किया जायगा।

संख्याओं के संस्कृत शब्द।

१ = एक, रूप, **जमीन** के नाम (भू, भूमि, धरणी,…), **चन्द्रमा** के नाम (चन्द्र, शशी, …)।

२ = द्वौ, युग्म, दस्र, अश्विनौ, **यम** के नाम (यम, अंतक, …), **हाथ** के नाम (हस्त, कर, …), **आँख** के नाम (नेत्र, दृक्, …), पक्ष, युग।

३ = त्रीणि, लोक, शिवनेत्र, **आग** के नाम (अग्नि, अनल, …), राम, गुण, क्रम।

४ = चत्वारि, **समुद्र** के नाम (अब्धि, जलधि, …), वेद, श्रुति, अष्टका, कृत, युग।

५ = पञ्च, प्राण, **शर** के नाम (बाण, इषु, …), इन्द्रिय, **हवा** के नाम (वायु, पवन[१], …), भूत, **बुद्धि** के नाम (धी, मेधाः, …)।

६ = षट्, ऋतु, **शत्रु** के नाम (अरि, रिपु, …), रस, अंग, तर्क।

७ = सप्त, **पहाड** के नाम (अचल, नग, …) स्वर, प्राचीनों के मत से पवन[१], वायु, …, मुनि, **घोडे** के नाम (अश्व, हय, …)।

---

१ मेरी छपवाई **भट्टोत्पलटीकासहित बृहत्संहिता** के २५ पृष्ठ की टिप्पणी देखो।

८ = अष्ट, **हाथी** के नाम (दन्ती, करी, …), **साँपों** के नाम (नाग, अहि, …), मङ्गल, वसु।

९ = नव, नन्द, अंक, निधि, ग्रह, **छेद** के नाम (छिद्र, रन्ध्र, विवर, अंतर, …)। **फलित** में छिद्र से आठवाँ स्थान लेते हैं।

१० = दश, पंक्ति, **दिशा** के नाम (दिक्, काष्ठा, …), कहीं कहीं **रावण-मुख** से भी दश लेते हैं पर गणित में यह नाम नहीं मिलता।

११ = एकादश, **महादेव** के नाम (रुद्र, शिव, …)।

१२ = द्वादश, **सूर्य** के नाम (रवि, मित्र, …) कभी कभी **शङ्कु** से भी १२ लेते हैं।

१३ = त्रयोदश, **विश्वेदेव** के नाम।

१४ = चतुर्दश, **इन्द्र** के नाम (शक्र, सुरराज, …), मनु।

१५ = पञ्चदश, दिन, तिथि, …।

१६ = षोडश, अष्टि, **राजा** के नाम (भूप, नृप, …)।

१७ = सप्तदश, अत्यष्टि, घन।

१८ = अष्टादश, धृति, पुराण,

१९ = ऊनविंशति, वेद में नवविंशति, अतिधृति।

२० = विंशति, **नह** के नाम (नख, करज, …), कृति।

२१ = एकविंशति, **मूर्छना,** स्वर्ग, प्रकृति।

२२ = द्वाविंशति, आकृति।

२३ = त्रयोविंशति, विकृति।

२४ = चतुर्विंशति, जिन, सिद्ध, अर्हत्, पञ्चसिद्धान्तिका में काष्ठा से भी कहीं कहीं परमक्रान्ति २४ ली गई है।

२५ = चतुर्विंशति, तत्त्व।

२६ = षड्विंशति, उत्कृति।

२७ = सप्तविंशति, **नक्षत्र** के नाम (भ, तारा, ···)।
२८ = अष्टाविंशति।
२९ = ऊनत्रिंशत्, वेद में नवविंशति।
३० = त्रिंशत्।
३१ = एकत्रिंशत्।
३२ = द्वात्रिंशत्, **दाँत** के नाम (दन्त, दशन)।
३३ = त्रयस्त्रिंशत्, **देवता** के नाम (देव, सुर, ···)।
३४–४८ = प्रसिद्ध गिनती में जो नाम आते हैं।
४९ = ऊनपञ्चाशत्, तान।
५०–९९ = प्रसिद्ध गिनती में जो नाम आते हैं।
१०० = शत, दशति, दशति कहीं कहीं पुराणों में मिलता है।
३६० = भांश, चक्रांश, ज्यौतिषवेदाङ्ग में भांश = २४८।
२१६०० = चक्रकला, भगणकला,

एहि अँगरेजी-राज-बल सब देशन की रीति।
समुझि बूझि लखि मनन करि भाइन पर करि प्रीति ॥ १ ॥
अंकगणित की कछु कथा लिखी **सुधाकर** धीर।
ताहि बाँचि पुरवहु कसर निज बुधि-बल लखि हीर ॥ २ ॥

इति सुधाकरद्विवेदिकृते गणितेतिहासे पाटीगणितेतिहासरूपः
प्रथमभागः समाप्तः।

इस ग्रंथ में जिन प्रसिद्ध पंडितों के नाम आए हैं संक्षेप से उन के

जीवनचरित्र।

अब्बासिद्दी खलीफा अल्मन्सूर (दूसरे)।

इनका पहला नाम अबूज़ाफर था अपने भाई अबूलअब्बास के मरने पर सन् ७५४ ई० में बग़दाद के दूसरे खलीफा हुए थे। बनी अब्बास या अब्बासिड्स के खानदान में होने से इन्हें अब्बासिद्दी कहते हैं। इन के चाचा, अली के बेटे अब्दुल्लाह आप खलीफा होने के लिये इन से लड़े थे पर इन के सर्दार अबू मुस्लिम से मारे गए। ये विद्या के बड़े रसिक थे। बहुत पुस्तकों का अनुवाद अरबी में करवाया। सन् ७७५ ई. में बग़दाद से मक्के जाते समय राह में बीर मैमून स्थान में मर गए। मरने पर इन की लास मक्के में लाई गई। बहुतों के मत से ६३ और बहुतों के मत से ६८ वर्ष की उम्र में मरे और २२ चान्द्र वर्ष तक राज किए। ये बड़े लोभी थे; मरने पर इन के खजाने में ६००,०००,००० दिरहम और २४,०००,००० दीनार मौजूद थे।

अबुल्-माशर।

बगदाद के खलीफा अल-मामून के प्रधान ज्यौतिषी थे। इन का पूरा नाम ज़ाफर बिन्-मुहम्मद बिन्-उमर अबुल्-माशर है। ये अरबी के फलितज्यौतिषिओं के शाहजादे कहलाते हैं। बलख में पैदा हुए थे। जिस संस्कृतगणितसारणी का अनुवाद इन्होंने अरबी में किया है उस का नाम उल्फ या किताब-उल्-उल्फ है। इन के किताब का ल्याटिन–अनुवाद सन् १८५६ ई० में वेनिस में छपा है। ये सन् ८८५ ई० में मरे हैं।

अमरसिंह ।

राजा विक्रम के नवरत्नों में गिने जाते हैं। नवरत्नों में वराहमिहिर भी हैं। इस लिये वराहमिहिर के समय में अमरसिंह थे (वराहमिहिर को देखो)।

अरिस्टोटल (अरस्तू, *Aristotle*)।

ईशा के ३८४ वर्ष पहले *Stagira* के *Macedonia* स्थान में पैदा हुए और ६२ वर्ष की अवस्था में मरे।

ये फिलासफर थे। कुछ यंत्रविद्या (*Machanics*) के प्रश्नों के ऊपर भी विचार किया है।

अल करीह (*Al Karhi*)।

बग़दाद के रहनेवाले थे। सन् १००० ई. के आरम्भ में थे। अरबवालों के बीजगणितों में इन का बीजगणित सब से प्रधान गिना जाता है। इन्हों ने दृढसंख्या पर भी बहुत कुछ लिखा है।

अल कलसडी (*Al Kalsadi*) अबुल हसन अली बिन मोहम्मद।

पाटीगणित में बड़े निपुण थे। सन् १४७७ ई. या सन् १४८६ ई. में मरे हैं।

अल नसवी (*Al Nasawi, Abul Hasan Ali ibn Ahmed*)।

सन् १००० ई. में ख़ुरासान के फ़ामनस स्थान में थे। गणित के अच्छे पण्डित थे।

अलहुशेन (*Al hossein*)।

सन् ९८० ई. में पैदा हुए और सन् १०३७ ई. में मरे। अरब के एक अच्छे गणित के पण्डित थे।

अशोक।

ईशामसीह के ३२३ वर्ष पहले बड़े सिकन्दर ने सब लोगों को जीत कर गर्मी के दिन में बाबिलोन (*Babylon*) में एक दर्बार किया। सर्दारों ने सिकन्दर से कहा कि अपने राज में से हम लोगों को अब जागीर दीजिए।

सिकन्दर ने कहा कि सब लोग हिन्दुस्तान को जीतो वह बड़ भारी देश है, जीतने पर मैं तुम लोगों को वहाँ पर जागीर देऊँगा।

ग्रीक सर्दारों ने यह बात न मानी। हिन्दुस्तान के जीतने पर सर्दारों ने उसका अधिकार अपने हाथों में रखने का पक्का विचार कर लिया।

उसी साल जाड़े के दिनों में सिकन्दर* की मौत हुई। पंजाब के बसनेवालों ने स्वतन्त्रता पाने के लिये बड़े बड़े सर्दारों को मार डाला। सब बसनेवालों का उभाड़नेवाला एक गरीब घर का चन्द्रगुप्त मौर्य था जिसने उधर की छोटी छोटी जातिओं के आदमिओं को मिला कर सब की मदद से सब परदेशियों को निकाल दिया और सब पंजाब को भी अपने आधीन कर लिया।

पंजाब जीत लेने पर उसने मगध के राजा धननन्द के ऊपर चढ़ाई की और थोड़े ही दिनों में धननन्द को राजसिंहासन से उतार कर आप पटने की राजगद्दी पर बैठ कर राज करने लगा।

उस समय हिन्दुस्तान में मगध प्रधान राज गिना जाता था। पीछे से यही चन्द्रगुप्त समुद्र के अन्त तक हिन्दुस्तान का राजा हो गया।

विजयी सेल्यूकस (*Seleucus*) सिकन्दर के मरने के दो वर्ष बाद बाबिलोन का सत्रप (*Satrap of Babylon*) बन कर सिकन्दर के राज का आधा हिस्सा दबा कर प्याराडिसोस (*Para-*

* ब्रिटिश म्यूज़िअम में सिकन्दर के चेहरे की एक पत्थर की मूरत रक्खी हुई है।

deisos) में राज करने लगा ।

सेल्यूकस को लोग सीरिआ (*Syria*) का राजा भी कहते हैं । सेल्यूकस ने चन्द्रगुप्त के दर्बार में मेग्यासूथिनीज़ (*Megasthenes*) को अपना राजदूत बना कर भेजा था । उसने चन्द्रगुप्त का प्रभाव देख कर बहुत कुछ अपनी पोथी में लिखा है । बहुत लोग यह भी कहते हैं कि सेल्यूकस ने चन्द्रगुप्त के साथ अपनी बेटी व्याह दी थी ।

चौबीस वर्ष हिन्दुस्तान का राज कर चन्द्रगुप्त मरा । उस के बाद उसका पुत्र बिन्दुसार जिसे लोग अमित्रघात भी कहते हैं, पचीस वर्ष हिन्दुस्तान का राज कर मरा ।

ईशा के २८० वर्ष पहले अठत्तर वर्ष के हो कर सेल्यूकस मरे और इनके मरने के आठ वर्ष बाद बिन्दुसार के बेटे अशोक पटने की राजगद्दी पर विराज कर सब हिन्दुस्तान के राजा हुए । ये बौद्धमत के बड़े पक्षपाती थे । सब देशों में पत्थर के खंभों पर बौद्ध का उपदेश खोदवाकर उसके अनुसार प्रजाओं को चलने के लिये हुक्म दिया था । उन्हों ने ३८ वर्ष तक हिन्दुस्तान का राज किया है । इन के देखने से प्रजालोग बहुत प्रसन्न होते थे इसलिये उन्हें लोग 'प्रियदर्शी' कहते थे । बौद्ध के ग्रन्थों में इन की बहुत कथा लिखी है । *Vincent A. Smith, M. R. A. S.* ने अशोक (*Asoka*) नाम की, आक्सफोर्ड, क्ल्यारेंडन प्रेस में (*Oxford. at the Clarendon Press: 1901*) सन् १९०१ ई. में भी एक पोथी अँगरेजी में छपवाई है ।

आर्किमिडिज़ (*Archimedes*) ।

ईशामसीह के २८७ वर्ष पहले सिराक्यूज (*Syracuse*) में पैदा हुए थे और ७५ वर्ष की उम्र में एक रोमन सिपाही के हाथ से मारे गए । अलेक्ज़ंड्रिया युनिवर्सिटी में कोनान (*Conon*) से पढ़े थे । यंत्रविद्या में इन की अद्भुत शक्ति थी । पढ़ने के बाद सिसिली (*Cicily*) में रह कर उम्र बिताई । जब कभी वहाँ के राजा हीरो (*Hiero*)

को किसी बात में कठिनाई आ पड़ती तब इन की सलाह से वह काम किया करता था ।

आर्यभट ।

पटने के रहनेवाले थे । तेइस वर्ष की उम्र में इन्हों ने एक ज्यौतिषसिद्धान्तग्रन्थ लिखा है जिसे लोग 'लघुआर्यभटीय सिद्धान्त' कहते हैं । यह ग्रन्थ सन् ४९९ ई. में लिखा गया है । (गणकतरङ्गिणी देखो) ।

आर्यभट दूसरे ।

इन का बनाया महासिद्धान्त है जिसे मैं ने अपनी टीका के साथ बनारस संस्कृत-सीरिज़ में छपवा दिया है । बालशङ्करदीक्षित के मत से इन का समय ९५३ ई० है (महासिद्धान्त में मेरा विषयानुक्रम देखो) इन्हीं के महासिद्धान्त में गुणन, भजन, वर्ग, वर्गमूल, घन और घनमूल के जाँचने के लिये बड़ी सहज विधि लिखी है ।

इसी विधि से आजकल की ९ निकालनेवाली विधि निकली है ।

आलबर्ट गिरार्ड (*Albert Girard*) ।

सन् १५९०-१६३४ ई० में रहे । समीकरणमीमांसा (*Theory of equations*) पर इन का ग्रन्थ है ।

आलबर्ट डूरर (*Albert Dürer*) ।

सन् १४७१ ई० में न्यूरेम्बर्ग (*Nuremburg*) में पैदा हुए ; वहीं सन् १५२८ ई० में मरे । कारीगरी में बड़े मशहूर थे । वक्रक्षेत्रों की नई रीति के मूलपुरुष हैं । उन्हों ने जो एक तसवीर में चौंतीसा लिखा है वह

१६	३	२	१३
५	१०	११	८
९	६	७	१२
४	१५	१४	१

यही है ।

एराटोस्थेनेस (*Eratosthenes*) ।

ईशा के २७६ वर्ष पहले अफ्रिका के सिरेन (*Cyrene*) स्थान में पैदा हुए। ८२ वर्ष के होकर अलेकूज़ंड्रिया में मरे। रेखागणित में बड़े निपुण थे। दृढ़संख्या का ज्ञान सब से पहले इन्ही को हुआ इसी लिये लोग इन्हें शिव (*Sieve*) कहते हैं।

औट्रेड् (*Oughtred, William*) ।

सन् १५७४ ई. में मार्च की ५ ताः को एटोन (*Eton*) में पैदा हुए और सन् १६६० ई. में आल्बरी (*Albury*) के सरे (*Surrey*) स्थान में जून की ३० ताः को मरे। पाटी और त्रिकोणमिति पर इन के ग्रन्थ हैं।

कमलाकर ।

महाराष्ट्र ब्राह्मणनृसिंह के बेटे थे। इन के पूर्वज गोदावरी के उत्तर किनारे पर गोल गावँ के रहनेवाले थे। पर इन के पिता बनारस में आकर रहने लगे। उन्ही के साथ ये भी बनारस में रहते थे। अपने बड़े भाई दिवाकर से पढ़े थे। इन्हों ने सन् १६५८ ई. में सिद्धान्ततत्त्वविवेक बनाया है। इन्हों ने जिस वर्ष सिद्धान्ततत्त्वविवेक बनाया है उस समय यूरप में न्यूटन की १६ वर्ष की उम्र थी।

(गणकतरङ्गिणी देखो)

कुम्मर (*Kummer*) ।

सन् १८१० ई. मे पैदा हुए और सन् १८९३ ई. में मरे। बर्लिन युनीवर्सिटी में प्रोफेसर थे। मिश्रित संख्या (अ + क $\sqrt{-१}$) और दृढ़-संख्या पर बहुत कुछ लिखे हैं।

कृष्णदैवज्ञ ।

जहाँगीर बादशाह के प्रधान पण्डित थे। इन के पिता का नाम

बल्लाल और माता का नाम गोजी था।

भास्कर के बीजगणित पर इन की नवाङ्कुरा टीका प्रसिद्ध है। यह टीका सन् १५९० ई. के लग भग बनाई गई है। और बातों के लिये गणकतरङ्गिणी देखो ।

केप्लर (*Kepler, Johann*)

स्टुट्गार्ट (*Stuttgart*) के नगीच वुर्टेमबर्ग (*Würtemberg*) में सन् १५७१ ई. में डिसेम्बर २७ ता. को पैदा हुए। रेजेन्सबर्ग (*Regensburg*) में सन् १६३० ई. में मरे। सिद्धान्ती थे, टाइको ब्राहे (*Tycho Brahe*) के मददगार थे। लघुरिकूथ को व्यवहार में ले आने के लिये इन्ही ने यत्न किया। सन् १६०४ ई. में ग्रहों के भ्रमण पर तीन सिद्धान्त निकाले जिनके आधार से सिद्धान्तविद्या में बहुत उन्नति हुई। स्त्री के मर जाने से बहुत दुःखी हुए। दूसरी विवाहिता स्त्री भी थोड़े ही दिनों में पगली हो गई। फलित ज्यौतिष के बड़े विश्वासी थे। फलित ही के लिये वेधकर ग्रहकक्षाओं के तीन सिद्धान्त निकाले।

क्यार्डन ।

क्यार्डन का पूरा नाम *Cardan, Jerome* (*Hieronymus, Girolamo*) है। ये सन् १५०१ ई. सेप्टेम्बर की २४ ता. को पविआ (*Pavia*) में पैदा हुए थे और सन् १५७६ ई. सेप्टेम्बर की २१ ता. को रोम (*Rome*) में मरे। बालोग्ना (*Bologna*) और पदुआ (*Padua*) में गणित के अध्यापक थे।

इन्हों ने सन् १५३९ ई. में मिलन (*Milan*) में टार्टाग्लिआ (*Tartaglia*) के घर जा कर बड़ी विनती से कसम खाया कि "मुझे अपने घनसमीकरण की तोड़ने की विधि बता दीजिए, मैं किसी को न बताऊँगा।" सीख लेने पर अपनी बात को तोड़ कर सन् १५४५ ई.

में अपनी *Ars magna* नाम की पोथी में छपवा दिया। छपवा देने से वह क्यार्डन की विधि कहलाती है (समीकरणमीमांसा देखो)। ये खूनी नहीं तो पूरे क्रोधी थे। एक वेर क्रोध से अपने लड़के का कान काट लिया पर पोप ग्रेगरी (*Gregory* XIII) की कृपा से कैद होने से बच गए। ये फलित ज्योतिष के बड़े विश्वासी पण्डित थे। पोप से अपने मरने का समय सन् १५७६ ई. सेप्टेम्बर की २१ ता. बताया था। उस दिन कुछ भी बीमार न थे पर अपनी बात रखने के लिये आत्महत्या कर मर गए। इन्हें दो लड़के थे; दोनों अपने बाप के ऐसे बड़े दुराचारी थे।

क्लैरौट (*Clairaut, Alexis Claude*)

सन् १७१३ ई. में प्यारिस में पैदा हुए और वहीं सन् १७६५ ई. में मरे। वक्रक्षेत्रों के विचार में प्रधानपुरुष थे।

गणेशदैवज्ञ।

ज्यौतिष के बड़े पण्डित थे। इन के पिता का नाम केशव और माता का नाम लक्ष्मी था। समुद्र के किनारे दक्षिण में नन्दी गावँ में पैदा हुए थे। तेरह वर्ष की उम्र में प्रसिद्ध करण ग्रन्थ ग्रहलाघव को सन् १५२० ई. में बनाया है। भास्कर-लीलावती पर इन की बुद्धिविलासिनी टीका मशहूर है। (गणकतरङ्गिणी देखो)

गर्बर्ट (*Gerbert, Pope Sylvester* II)

सन् १००३ ई. मई की १३ ता. को ये ५० वर्ष की उम्र में मरे हैं। सन् ९७१ ई. में ये रोम (*Rome*) में थे। ये संगीतशास्त्र और ज्यौतिष सिद्धान्त में बड़े निपुण थे। पीछे से रीम्स (*Rheims*) में चले गए। इन का बड़ा नाम सुन कर हग क्यापेट (*Hugh Capet*) ने इन्हें अपने लड़के राबर्ट (*Robert*) के पढ़ाने के लिये बुलाया था। यही राबर्ट पीछे से दूसरे ओथो (*Otho* II) के नाम से फ्रान्स

(*France*) के राजा हुए। सन् ९९९ ई. में उन्हों ने पोप हो कर ओथो से दूसरे सिल्वेस्टर (*Sylvester* II) की पदवी पाई। सुनते हैं व्याटिकन् (*Vatican*) में अभी तक इनका पुस्तकालय मौजूद है। यह भी सुना जाता है कि इन्हों ने एक घड़ी भी बनाई थी जो बहुत दिनों तक म्यागडबर्ग (*Magdeburg*) में बड़ी हिफाजत से रक्खी थी। इस में एक पुर्जा (*Organ*) भाफ (*Steam*) से चलता था जो कि गर्बर्ट के मरने के बाद २०० वर्ष तक रीम्स में था। ये बड़े मिलनसार थे। छोटे बड़े सब इन से खुश रहते थे।

गर्हार्ट् (*Gerhardt*)

सन् १८९० ई. में इन्हों ने हानोवर (*Hanover*) की रायल लाइब्रेरी में लेबनिज़ (*Leibniz*) के लिखे कुछ नोट पाए थे जिन के ऊपर "*Observata Philosophica in itinere Anglicano sub initium Anni 1673*" लिखा है। लेबनिज़ पहले पहल जब लंडन में गया था उस समय के वे नोट हैं।

गेलिब्रांड (*Gellibrand, Henry*)

सन् १५९७-१६३७ ई. में थे; ग्रेशम (*Gresham*) कालेज में ज्योतिषसिद्धान्त (*Astronomy*) के प्रोफेसर थे।

गोबिन्दाचारी।

बनारस के दारानगर में रहते थे। अपने लड़के के दुराचार से दुःखी होकर पीछे से मिर्ज़ापुर के विन्ध्याचल में जा कर रहने लगे और वहीं सन् १८६७ ई. में मरे। इनके पिता का नाम गोवर्धन था। सरयूपार के भभयामिश्र थे। ज्यौतिष और तन्त्रशास्त्र में अपने समय में बड़े प्रसिद्ध पुरुष थे। (गणकतरङ्गिणी देखो)

गौतम–बुद्ध।

बनारस से सौ मील उत्तर की ओर हिमालय की तराई में शाक्य

जातिओं के छोटे राज की राजधानी कपिलवस्तु थी। उस के राजा सिद्धोदन नाम के थे। ये गौतम वंश के थे।

ईशा के ५५७ वर्ष पहले महामाया नाम की रानी से सिद्धोदन को एक बेटा हुआ जिस का नाम माँ बाप ने सिद्धार्थ रक्खा। यही सिद्धार्थ पीछे से योगाभ्यास से सिद्ध हो कर बुद्ध नाम से प्रसिद्ध हुए हैं। गौतम वंश में जन्म लेने से लोग इन्हें गौतमबुद्ध भी कहते हैं।

इन का सिद्धान्त था कि क्या ऊँच जाति क्या नीच जाति सभी को परमात्मा में निश्चल ध्यान लगाने से निर्वाण पद प्राप्त हो सकता है। और मनुष्य का सच्चा धर्म यही है कि सब जीवों पर दया रक्खे, किसी जीव की किसी समय भी हिंसा न करे 'अहिंसा परमो धर्मः।'

सिद्ध होने पर सब से पहले इन का व्याख्यान बनारस, सारनाथ में जहाँ पहले हरने (हरिण) बहुत रहते थे, हुआ था। अब ये हरने सारनाथ से ६ मील पूर्व और दक्षिण की ओर जाल्हूपुर में रहते हैं। जाल्हूपुर में राजा बनारस की छावनी है। महाराज हरसाल गर्मिओं के दिन एक बार शिकार खेलने वहाँ जाते हैं।

बुद्ध अपने मत के फैलाने के लिये आप खुद चारो ओर घूमते थे और चेलों को भी अपने मत के ऊपर व्याख्यान देने के लिये देशविदेश भेजते थे। अस्सी वर्ष की उम्र में जब ये अपने जन्मस्थान से पूर्व की ओर व्याख्यान देने के लिये ८० मील आ गये थे तब अकस्मात् दुःख के बिना निर्वाणपद को प्राप्त हुए। वह स्थान कुशीनगर के पास है। विश्वामित्र कुशवंश के हैं। लोग इन्हें कौशिक भी कहते हैं, संभव है कि कौशिकों की राजधानी ही कुशीनगर के नाम से उस समय प्रसिद्ध रही हो। इस तरह से संभव है कि आज कल के बक्सर और जनकपुर के बीच में कहों कुशनगर मट्टी में मिला पड़ा हो।

ग्लैशर (*Glaisher*)

स. १८४८ ई. में पैदा हुए। ट्रिनिटी कालेज में गणित के प्रोफेसर थे।

चार्ल्स मार्टेल (*Charles Martel*)

फ्रांस के राजा पेपिन् हेरिस्टेल (*Papin Heristal*) के बेटे थे। बाप के मरने पर फ्रांक (*Frank*) का राजा चिल्पेरिक (*Chilperic* II) दूसरे ने इन्हें इन के स्थान से निकाल दिया था। पीछे से सन् ७३२ ई. के अक्टोबर महीने में इन्हों ने अपने वैरिओं को जीत कर फिर अपना राज ले लिया। ये सन् ७४१ ई. में मरे।

जगन्नाथ पण्डित।

जयपुर के राजा जयसिंह के प्रधान पण्डित थे। जयसिंह की आज्ञा से अरबी से संस्कृत में रेखागणित और ज्यौतिषसिद्धान्त (सम्राट्) बनाया। ये सन् १७२७ ई. में थे। (गणकतरङ्गिणी देखो)

जयराम ज्यौतिषी

बनारस के रहनेवाले महाराष्ट्र ब्राह्मण बबुआ ज्यौतिषी के बेटे थे। बबुआ ज्यौतिषी ही ने अँगरेजों से लड़ने के लिये वजीरअली को मुहूर्त्त दिया था (मेरी गणकतरङ्गिणी देखो)।

जयराम जी ज्यौतिष, व्याकरण, न्याय,...... अनेक विद्याओं में निपुण थे। दुर्गाशंकर पाठक जी के समय में मौजूद थे। सन् १७९५ ई. में मरे हैं। कुछ अधिक जानना हो तो गणकतरङ्गिणी देखो।

जान् क्रिश्चियन वन् (*Johann Christian Von*), *Wolf*.

सन् १६७९ ई. ब्रेस्ला (*Breslau*) में पैदा हुए और सन् १७५४ ई. में हाले (*Halle*) में मरे। हाले और मार्बर्ग (*Marburg*) में गणित के प्रोफेसर थे। स्कूलों में पढ़ने के लायक पोथिओं को बनाया है।

जान् पेल (*John Pell*)

सन् १६१० मार्च की पहली ता: को ससेक्स (*Sussex*) में

पैदा हुए और सन् १६८५ डिसेंबर की १० ता: को लंडन में मरे। रान (*Rahn*) के बीजगणित का अनुवाद किया है।

टार्टाग्लिआ (*Nicholas Tortaglia*)

इन का असल नाम निकोलो फान्टना (*Nicolo Fontana*) था। सन् १५०० ई. में ब्रेस्सिया (*Brescia*) में पैदा हुए और वेनिस (*Venice*) में सन् १५५९ ई. डिसेंबर की १४ ता. को मरे।

सन् १५१२ ई. में जब फरासीसी लोग शहर को लूटने लगे उस समय शहर के लोग भाग कर गिरिजा (*Cathedral*) में छिपे वहाँ पर सिपाहिओं के हाथ से सब कतल किए गए। इनके भी तालू और जबड़े किसी की तलवार से कट गए थे। सिपाहिओं ने मरा समझ कर छोड़ दिया था पर माँ ने देखा कि लड़का जीता है सो बड़े प्यार से उठा लाई। गरीब होने से वेचारी दवा न कर सकी। कुत्ते से उस घाव को चटाया करती थी। परमात्मा की कृपा से घाव अच्छा हो गया पर तालू कट जाने से ये अच्छी तरह बोल न सकते थे इसी से इन्हें लोग निक्कोला कहने लगे। माँ ने कुछ लिखने पढ़ने का बन्दोवस्त किया पर ये ऐसे गरीब थे कि लिखने के लिये काग़ज़ भी न खरीद सकते थे। पीछे से सन् १५३५ ई. के लगभग वेनिस में गणित के प्रोफेसर हुए और थोड़े ही दिनों में बहुत नामी हुए। घनसमीकरण तोड़ने की विधि इन्हीं की निकाली हुई है जिसे लोग क्यार्डन की विधि कहते हैं।

टालेमी (*Ptolemy, Ptolemaeus Claudius*)

सन् ८७ ई. टालमिस (*Ptolemais*) में पैदा हुए। अलेक्जंड्रिया में मरे। ग्रीक सिद्धन्तज्ञों में एक प्रसिद्ध पुरुष थे।

डाइओफ्यांटस (*Diophantuss of Alexandria*)

ईशामसीह के पहले २७५ वर्ष के लगभग में पैदा हुए हैं। बीजगणित में बहुत ही निपुण थे। कुट्टक और वर्ग प्रकृति पर बहुत ही विचार किया है। बीजगणित भाग में इन के प्रकार लिखे जायँगे। ये ८४ वर्ष के हो कर मरे थे।

डिकार्टेस (*Descortes, Rene du Perron*)।

सन् १५९६ ई. में ला हये टौरेने (*La Haye, Touraine*) में पैदा हुए; सन् १६५० ई. में स्टाखोलम् (*Stockholm*) में मरे। आनालिटिकल जामेट्री को इन्हीं ने निकाला है। बीजगणित में बहुत नई बातें निकाली हैं।

डि मार्गन (*De Morgan, Augustus*)।

मदरास हाते के मदुरा जिले में, जहां मीनाक्षी देवी का बड़ा भारी मन्दिर है सन् १८०६ ई. के जून महीने में पैदा हुए और १८७१ ई. मार्च की १८ ता. को यूरप में मरे। ये सन् १८२८ ई. में लंडन युनिवर्सिटी में गणित के प्रधान अध्यापक हुए थे। बीजगणित में बड़े निपुण थे। पटियाला के लाला रामचन्द्र के म्याग्ज़िमा और मिनिमा (*Maxima & Minima*) को इन्हीं ने लंडन में छपवाया था। ये अपने समय में अद्वितीय गणित के पण्डित थे। (लाला रामचन्द्र के लिये मेरा चलनकलन देखो)।

डिरिक्लेट (*Dirichlet, Petor Gustav Lejeune*)।

सन् १८०५ ई. में डुरेन (*Duren*) में पैदा हुए और १८५९ ई. में गोटिंजेन (*Göttingen*) में मरे। दृढ़संख्या पर बहुत कुछ लिखा है। गोटिंजन में गास् (*Gauss*) के बाद गणित के प्रोफेसर थे।

ताबित बिन कोर्रा (*Tabit ibn Kurra*)।

सन् ८३३ ई. में मेसोपोटामिआ (*Mesopotamia*) के हर्रन (*Harran*) में पैदा हुए और सन् ९०२ ई. में बगदाद में मरे।

बड़े सिद्धान्ती और हिसाबी थे। ग्रीकगणित का अरबी में अनुवाद भी किया है। दृढ़संख्या के ऊपर भी बहुत कुछ लिखा है।

तुलसीदास।

बाँदे जिले के राजापुर गावँ के रहनेवाले सरयूपारी ब्राह्मण थे। संवत् १६८० वि. (१६२३ ई.) सावन सुदी सप्तमी को बनारस के असीघाट पर मरे। इन का भाषारामायण घर घर प्रसिद्ध है। इन्हों ने प्रधान १२ ग्रन्थ बनाए हैं। (काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के मेम्बरों का छपवाया रामचरित-मानस को, जो इंडियन प्रेस अलाहाबाद में छपा है, देखो)।

थेओडोरस (*Theodorus of Cyrcne*)।

ईशा के ४१० वर्ष पहले रहे। प्लेटो (*Plato*) के स्कूल में गणित के पण्डित थे। अवर्गांक पर इन का लेख मिलता है।

दीनदयाल बाबा।

पहले ये बनारस के पंचकोसी के देहलीविनायक पर रहते थे पीछे से काशी साक्षीविनायक पर रहने लगे। ये हिंदी भाषा के बहुत ही अच्छे कवि थे। बाबूहरिश्चन्द्र के पिता गोपालचंद, लोकनाथ चौबे, मेरे पिता पण्डित कृपालदत्त,··· सब इन के शिष्य थे। इन के बनाए बहुत ग्रन्थ हैं उन में अनुरागबाग और अन्योक्तिकल्पद्रुम बहुत प्रसिद्ध हैं। सन् १८७० ई. के लगभग बनारस में मरे हैं।

दुर्गाशङ्कर पाठक।

बनारस के रहनेवाले औदिच्य ब्राह्मण थे, अपने भाई शिवलाल और लक्ष्मीपति से पढ़े थे। अपने समय में अद्वितीय ज्यौतिषी थे। लाहोर के महाराज खड्गसिंह जी इन्हीं के मुहूर्त्त से राजगद्दी पर बैठे थे। इन्हों ने लाहोर के नवनिहालसिंह की जन्मपत्री बनाई थी जिसे छ

हजार रुपए पर वकील छन्नूलाल के यहाँ इन के भतीजे जटाशङ्कर ने रेहन रक्खी थी। ये सन् १८३७ ई. में मौजूद थे। काशी के हमलोग सब इन्हीं की शिष्यपरम्परा में हैं। इन के विषय में कुछ अधिक जानना हो तो मेरी गणकतरङ्गिणी देखो।

नागेश।

इन की माता का नाम सतीदेवी था। शिवभट्ट के पुत्र थे। शृङ्गवेर (सिँगरौरा) के राजा की आज्ञा से दीक्षित की सिद्धान्तकौमुदी पर इन की बनाई टीका शब्देन्दुशेखर सर्वत्र प्रसिद्ध है। भट्टोजिदीक्षित के पोते हरिदीक्षित से पढ़ा था।

हरिदीक्षितपादाब्जसेवनावाप्तसम्मतिः। यह विवरण में लिखा है। इन्हों ने बहुत ग्रन्थ बनाए हैं।

नारायण पण्डित।

ये नृसिंह (नरसिंह) पण्डित के पुत्र थे। इन्हों ने सन् १३५६ ई. में गणितकौमुदी बनाई है। इस के ग्यारहवें 'भागादान' व्यवहार में दृढसंख्या की चर्चा है। किसी संख्या का दृढसंख्याओं के गुण्य गुणक रूप में खण्ड किया है। इस कौमुदी में बहुत नई बातें हैं। इस की एक प्रति कयाम्ब्रिज में और एक प्रति मेरे यहाँ है। गणितकौमुदी के अन्त में नारायण ने लिखा है कि——

गजनगरविमितशाके दुर्मुखवर्षे च बाहुले मासि।
धातृतिथौ कृष्णदले गुरौ समाप्तिं गतं गणितम्॥

इति श्रीसकलकलानिधिश्रीमन्नृसिंहनन्दनगणितविद्याचतुराननारायणपण्डितविरचितायां गणितपाट्यां कौमुद्याख्यायां भद्रगणितं नाम चतुर्दशो व्यवहारः।

गणितकौमुदी के शून्य परिकर्माष्टक में नारायण ने लिखा है "अत्र पाटीगणिते खहरे कृते लोकस्य व्यवहृतौ प्रतीतिर्नास्ति-इत्यत्र ख-

हरो नोक्तः । अस्मदीये बीजगणिते बीजोपयोगित्वात् तत्र खहरः कथितः" इस से साफ है कि इन का बनाया बीजगणित भी है । इन के बीजगणित की एक खण्डित पुस्तक बनारस संस्कृतकालेज की लाइब्रेरी में है ।

निकोमेकस (*Nicomachus of Gerasa, Arabia*)

सन् १०० ई. में मौजूद थे । अंकगणित पर इन का एक ग्रन्थ है ।

नेपिअर (*Napier, John*) ।

सन् १५५० ई. में मर्चिस्टन (*Merchiston*) में पैदा हुए और सन् १६१७ ई. में वहीं मरे । उस समय मर्चिस्टन एडिन्बर्ग (*Edinburgh*) के पास एक साधारण बस्ती थी ।

न्यूटन (*Newton, Sir, Isaac*) ।

पुरानी गणना से सन् १६४१ डिसेंबर की २५ ता. को वूल्सथोर्प (*Woolsthorpe, Lincolnshire*) में पैदा हुए और सन् १७२७ ई. मार्च की २० ता. को केन्सिंगटन (*Kensington*) में मरे । सन् १६६९ ई. में क्यांब्रिज में गणित के प्रोफेसर हुए थे । संसार में सब से बड़े गणित के पण्डित गिने जाते हैं । अधिक जानना हो तो मेरे भाषाबोधक का दूसरा भाग देखो ।

परमेश्वर ।

आर्यभट के सिद्धान्त पर इन की एक टीका है जिसे हालेंड मे प्रोफेसर कर्णसाहब ने सन् १८७३ ई. छपवा दी है । उस में भास्कराचार्य के बहुत वचन मिलते हैं, इस से साफ है कि ये भास्कराचार्य के बहुत पीछे हुए हैं ।

पाणिनि और पतञ्जलि ।

पतञ्जलि के विषय में बहुत मतभेद है । प्रोफेसर वेबर साहेब

का मत है कि—"पतञ्जलि ने "अरुणद्यवनः साकेतम्" यह महाभाष्य में लिखा है । यवन से ग्रीक राजा लिया गया है । ब्याक्ट्रिया (*Bactria*) के राजाओं में से किसी ग्रीक राजा ने साकेत (अयोध्या) को घेर लिया था । इन राजाओं का समय सन् २५ ई. है इस लिये पतञ्जलि का समय सन् २५ ई. से पीछे है ।

डा. गोल्डस्टकर (*Dr. Goldstucker*) के मत से पतञ्जलि का समय ईशामसीह के १५० वर्ष पहले है । बहुतों के मत से पाणिनि का समय ईशा से ८०० वर्ष पहले है और उस से बीस पच्चीस वर्ष बाद पतञ्जलि का समय है । पाणिनि का जन्मस्थान गांधार का शालातुर नगर है और पतञ्जलि का गोनर्द देश (गोंडा) है ।

प्रोफेसर रामकृष्णभण्डारकर ने वेबर वगैरह के मतों का खण्डन किया है । इस विषय में अधिक जानने के लिये *'The Indian Antiquary, Tebruary, 1873'* देखना चाहिए ।

सभों का मत संग्रह कर के बाबू रजनीकान्त गुप्त ने 'पाणिनि' नाम की एक पोथी बँगला भाषा में बहुत अच्छी छपवाई है । काशी, बंगसहित्यसमाज में इस की एक कापी है । पतञ्जलि महाभाष्य में अपने को गोणिका-पुत्र और गोनर्दीय कहते हैं ।

महाभाष्य में 'अरुणद्यवनो माध्यमिकान्' यह भी एक जगह है । यूरप के लोगों का अनुमान है कि बौद्ध के स्कूलों का नाम "माध्यमिक" है जो कि नागार्जुन के समय में स्थापित हुए । यवनों ने हिन्दुस्तान पर जब चढ़ाई की उस समय स्कूलों को भी घेरा है इस लिये पतञ्जलि ने बीती हुई बात को भी लिखा है । बहुत लोग 'माध्यमिक' से मध्यदेश 'दिल्ली' के रहनेवालों को लेते हैं ।

महाभाष्य के "मौर्य, माध्यमिक, यवन, पु*ष्पमित्रसभा, पुष्पमित्रं यजयमः, चन्द्रगुप्तसभा," वाक्यों से लोगों ने अनेक अनुमान दिखाए हैं ।

---

* अष्टा. १।१।६८

वात्स्यायन ने कामसूत्र में लिखा है कि 'गोणिकापुत्रः पारदारिकम्' (गोणिकापुत्र ने परदारा के ऊपर लिखा है) 'गोनर्दीयो भार्याधिकारिकम्' (गोनर्दीय ने भार्याधिकार के ऊपर लिखा है) इस से 'गोणिकापुत्र' और 'गोनर्दीय' भिन्न भिन्न मालूम होते हैं। काशिका में १, १, ७५ सूत्र की व्याख्या में 'गोनर्द' से पूर्व में एक देश 'प्राचां देशे' लिया है। कय्यट के मत से कात्यायन और पतञ्जलि दोनों पुर्बिया (पूर्व देश के) हैं। महाभाष्य में एक जगह पूर्व का लक्षण लिखा है 'व्यवहितेऽपि पूर्वशब्दो वर्त्तते। तद्यथा। पूर्वं मथुरायाः पाटलिपुत्रम्'। जो कुछ हो पर पाणिनि शाकटायन से पीछे हुए हैं क्यों कि उन्हों ने अपने व्याकरण में शाकटायन का मत भी लिखा है। जो शाकटायन बौद्ध हों तो बुद्ध से पीछे पाणिनि और पाणिनि से पीछे पतञ्जलि हैं इस में संशय नहीं।

संस्कृत के पण्डितों के बीच में पतञ्जलि के विषय में परम्परा से यह कथा प्रचलित है—

पाणिनि ने अपने व्याकरण 'अष्टाध्यायी' को बना कर अपने समय के पण्डितों को दिखलाया। और पण्डित तो साधारण रीति से देख कर कुछ न बोले पर कात्यायन ने बहुत दोष निकाला जो कि वार्त्तिक नाम से प्रसिद्ध हैं। इस पर पाणिनि को बहुत दुःख हुआ। लाचार शेष की पूजा करने लगे। एक दिन प्रातःकाल सन्ध्या करने के समय सूर्य को जलाञ्जलि देते समय उसी अञ्जलि से शेषनाग छोटे साँप की सूरत से जमीन पर गिर पड़े। इसी से उनका नाम पतञ्जलि पड़ा। इन के विष की झार से कोई पास खड़ा न हो सका। तब ये पर्दे के भीतर से अष्टाध्यायी की व्याख्या करने को तयार हुए। पाणिनि के अनुयायी लोग प्रातःकाल स्नान सन्ध्या कर वहाँ जाते थे और दो चार घंटा व्याख्यान सुन कर चले आते थे। जिस दिन जितना व्याख्यान होता था वह उसी दिन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। जैसे, प्रथमाह्निक, द्वितीयाह्निक,···, नवाह्निक ···। 'अ अ इति' इस सूत्र के व्याख्यान के समय किसी विद्यार्थी ने रूप देखने के लिये संयोग वश पर्दे को उठा दिया। पर्दे के उठते ही

पतञ्जलि के तेज से सब व्याख्यान सुननेवाले भस्म हो गए और पतञ्जलि भी अन्तर्धान हो गए। पाणिनि को इस समाचार से बडा दुःख हुआ। अपने विद्यार्थिओं को लेकर उस स्थान को देखने गए। एक भूत एक पेँड़ पर बैठ कर चुप चाप छिप कर पतञ्जलि के व्याख्यान को रोज सुना करता और उस पेँड़ के दूध से उसी के पत्ते पर लिखता जाता था।

पाणिनि के जाने पर उस पेँड़ के नोचे बहुत लिखे हुए पत्ते मिले। पाणिनि बड़े ध्यान से सब को बिनवा कर अपने यहाँ ले गए और उन्हें पाठक्रम से लगा डाले। कुछ पशुओं के खाजाने से या हवा के झकोर से उड़जाने से न मिले इसलिये जहाँ जहाँ ग्रन्थ खण्डित थे वहाँ वहाँ गुड़िला रेखा (गोल रेखा) का निशान बना दिया।

लोग उसी महाभाष्य को लिखने पढ़ने लगे। "श्रीहर्ष के समय तक खण्डित स्थानों में गोल गोल रेखाओं के चिह्न थे इसी लिये श्रीहर्ष ने लिखा है—'भाष्ये कुण्डलनामिव'।

पीछे से कय्यट ने विवरण करते समय उन रेखाओं के चिह्न निकाल दिए। अब जिन जिन सूत्रों के भाष्य नहीं हैं 'उन्हें भाष्यकार ने सहज जान कर छोड़ दिया है' यह पण्डितों में प्रसिद्ध है। पण्डित लोग ऋषिओं को अमर समझते हैं।

बहुत पण्डितों का मत है कि महाभाष्य पूरा मिला पर जहाँ जहाँ अर्थ न लगे वहाँ वहाँ पर लोगों ने गोल गोल रेखा कर दिया। पीछे से कय्यट ने सब महाभाष्य का विवरण कर उन गोल रेखाओं को मिटा डाला।

श्रीहर्ष ने नैषधचरित के दूसरे सर्ग के ९५ श्लोक में भी कुण्डलना से कठिन अर्थ ही लिखा है——

परिखावलयच्छलेन या न परेषां ग्रहणस्य गोचरा।
फणिभाषितभाष्यफक्किका विषमा कुण्डलनामवापिता॥

जी. पिकाक् (*Rev. G. Peacock. D. D.*)।

सन् १७९१ ई. अप्रिल की ९ ताः को डेंटान (*Denton*) में पैदा हुए और सन् १८५८ ई. नोवेंबर की ८ ताः को एली (*Ely*) में मरे। क्यांब्रिज के ट्रिनिटीकालेज में पढ़े थे, पीछे वहाँ के फेलो भी हो गए थे। सन् १८३७ ई. में एली के अध्यापक और सन् १८३९ ई. मे डीन हुए थे। अपने समय में बड़े प्रसिद्ध गणित के पण्डित थे। उस समय की एन्-साइक्लोपीडिया में इन्हीं का गणितसंबंधो लेख छपा था। चलनकलन (*Diffrential Calculus*) पर कुछ उदाहरण और एक बीज-गणित इन्हों ने बनाया है।

पिटिस्कस (*Pitiscus, Bartholomaeus*)।

सन् १५६१ ई. अगस्त की २४ ता. को पैदा हुए और १६१३ ई. जुलाई की २ ता. को हिडेल्बर्ग (*Heidelberg*) में मरे। इन का त्रिकोणमिति पर एक ग्रन्थ है।

पीटर (*Peter I. The Great*) *Alexeienitch.*

ये रूस (*Russia*) के बादशाह थे, इन का जन्म सन् १६७२ ई. जून की ९ ता. और मरण सन् १७२५ ई. जनवरी को २८वीं ता. को हुआ।

पुलिश।

बराहमिहिर ने पाँच सिद्धान्तों के मतों में इन के पौलिशसिद्धान्त का भी मत लिखा है (पञ्चसिद्धान्तिका देखो)। मेरी समझ में ये आ-र्यभट के पहले हुए हैं।

प्यास्कल् (*Pascal, Bloise*)।

सन् १६२३ ई. मे क्लेरमांट (*Clermont*) में पैदा हुए और सन् १६६२ ई. में प्यारिस में मरे।

दृढसंख्या, संभावना, और रेखागणित पर बहुत विशेष किए हैं। अच्छे हिसाबी थे।

प्रभाकर।

लल्ल के शिष्यधीवृद्धिद पर भास्कर की एक टीका है उस में लिखा है कि आर्यभट के शिष्य प्रभाकर आदि हैं। इस टीका की एक प्रति बनारस संस्कृतकालेज में है।

प्लेटो (*Plato*)।

ईशा के २२९ वर्ष पहले ऐथिन्स (*Áthins*) में पैदा हुए और वहीं ८१ वर्ष के होकर मरे। गणित पढ़ाने के लिये स्कूल बनाने के येही आदि पुरुष हैं।

फरम्याट (*Fermat, Pierre de.*)।

सन् १६०१ ई. मन्टौबन (*Montauban*) के नगीच बेऔमाँ-ड-लोमाग्ने (*Beaumont-de-Lomagne*) में पैदा हुए और क्यास्ट्रेस (*Castres*) में सन् १६६५ जनवरी की १२ ता. को मरे।

अपने समय के एक ही गणितज्ञ थे। दृढ़संख्याओं के अनेक सि-द्धान्त बनाए हैं।

बर्गी [*Burgi, Joost* (*Jobst*)]।

स्विट्ज़रल्यांड (*Lichtensteig, St. gall, Switzer-land*) में सन् १५५२ ई. में पैदा हुए और सन् १६३२ ई. में क्या-सेल् (*Cassel*) में मरे। सब से पहले इन्हीं ने एक पक्ष में अव्यक्त और रूपों को और दूसरे पक्ष में शून्य को रख कर समीकरण का रूप लिखा है।

बर्गो के ल्यूकस (*Lucas di Borgo*)।

इन्हें लोग ल्यूकस प्यासिओली (*Pacioli*) भी कहते हैं।

किसी ने इन्हें ल्यूकस प्यासिओलस (*Paciolus*) भी कहा है।

ये सन् १४५० ई. के लगभग टसकनी (*Tuscany*) के बर्गो स्थान में पैदा हुए; सेम, पिसा, वेनिस और मिलन में घूम घूम कर गणित पर व्याख्यान देते थे।

मिलन में गणित के अध्यापक भी हुए थे। फ़्लोरेन्स (*Florence*) में सन् १५१० ई. के लगभग मरे हैं। इन के विषय में बहुत बातें नहीं जानी गई हैं। इनका प्रधान गणितग्रंथ *Summa de Arithmetica, Geometria Proporzioni e properzionalita* सन् १४९४ ई. में वेनिस (*Venice*) में छपा था। इस में दो भाग हैं एक में अंकगणित और बीजगणित दूसरे में रेखागणित है। सब से पहले यह गणित की पुस्तक छपी है। पिसा के लेनार्डो (*Leonardo of Pisa*) के ग्रंथ में इन की बहुत बातें पाई जाती हैं।

बापूदेवशास्त्री।

इन के पिता का नाम सीतारामदेव और माता का नाम सत्यभामा था। इन का जन्म सन् १८२१ ई. नोवेंबर की पहली ताः को पूना में हुआ है और मरण सन् १८९० ई० में बनारस में हुआ। ये नागपुर में दुण्ढिराज कान्यकुब्ज से और पीछे से सेवारामजी से पढ़े थे। ये चितपावन महाराष्ट्र थे (गणकतरङ्गिणी देखो)।

बाचेट (*Bachet-de-meziriac*)

सन् १५८१ ई. में बर्ग-एन्-ब्रेसी (*Bourg-en-Bresse*) में पैदा हुए और सन् १६३८ ई. में मरे।

ये अपने गणित ग्रंथ *Problemes plaisants,...* से बहुत प्रसिद्ध हैं।

बारो (*Barrow, Isaae*)।

सन् १६३० ई. में लंडन में पैदा हुए; सन् १६७७ ई. मई मास की

४ ता. को क्यांब्रिज में मरे। क्यांब्रिज में ग्रीक और गणित के प्रोफेसर बड़े भारी थे। गणितज्ञ और व्याख्यान देनेवाले थे। न्यूटन इन्हीं के विद्यार्थी थे। इन के पीछे इन की जगह न्यूटन को मिली थी।

ब्रह्मगुप्त।

चापवंशी व्याघ्रमुख राजा के यहाँ रहते थे। इन के पिता का नाम जिष्णुगुप्त था। सन् ५९८ ई. में पैदा हुए थे। सन् ६२८ ई. में ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त और सन् ६६५ ई. में 'खण्डखाद्य' को बनाया है। इन्हीं के ग्रन्थ की छाया से भास्कराचार्य ने अपनी सिद्धान्तशिरोमणि बनाई है। (गणकतरङ्गिणी देखो)।

ब्रिग्ज् (*Briggs, Henry*)।

सन् १५६० ई. या सन् १५६१ ई. फेब्रुअरी में ह्यालिफाक्स, यार्कशायर (*Halifax, Yorkshire*) के नगीच वार्ली वूड (*Warley Wood*) में पैदा हुए और स. १६३० या स. १६३१ ई. जनवरी २६ ताः को आक्सफोर्ड में मरे। इन्हीं ने दश आधार में लघुरिक्थ का प्रचार किया।

ब्रौंकर (*Brouncker, william, Lord*)।

ये सन् १६२० ई. में पैदा हुए और सन् १६८४ अप्रिल की ५ ता. को वेस्टमिन्स्टर (*Westminster*) में मरे। लंडन की रायल सोसाइटी के बनाने में ये भी एक प्रधान पुरुष थे।

भट्ट बलभद्र।

आलबेरूनी ने अपने ग्रन्थ में इन की बहुत चर्चा की है। भट्टोत्पल ने भी बृहत्संहिता की टीका में कई जगह इन के वचन लिखे हैं। इस से जान पड़ता है कि ये भट्टोत्पल से पुराने हैं।

भट्टोजिदीक्षित ।

भानुदीक्षित को देखो ।

भट्टोत्पल ।

इन्हों ने बृहत्संहिता की टीका के मंगलाचरण में 'द्विजवरग्रीकां करोत्युत्पलः' इस से अपना नाम 'उत्पल' लिखा है तो भी लोग आदर से इन्हें 'भट्टोत्पल' कहते हैं । पञ्चसिद्धान्तिका को छोड़ कर बाकी वराहमिहिर के सब ग्रन्थों पर इन की टीका मिलती है । बृहज्जातकटीका के अन्त में लिखा है कि मैं ने शाके ८८८ याने सन् ९६६ ई. में इस टीका को बनाया है । इस लिये ये सन् ९६६ ई. में थे । (गणकतरङ्गिणी देखो) ।

भानुदीक्षित ।

(व्याकरण) सिद्धान्तकौमुदी बनानेवाले भट्टोजिदीक्षित के पुत्र थे । महीधर देश के राजा बघेलबंशी श्रीकीर्त्तिसिंहदेव के कहने से इन्हों ने अमरकोश की टीका 'व्याख्यासुधा' छपवाई । ये पीछे से सन्यासी हो गए थे, उस समय इन का नाम 'रामाश्रम' रक्खा गया है । बनारस कालेजियेट स्कूल के संस्कृत के पण्डित श्रीगणेशदत्त त्रिपाठी के घर संवत् १७३८ (स. १६८१ ई.) की लिखी एक सिद्धान्तकौमुदी की पुस्तक है इस से जान पड़ता है कि भट्टोजिदीक्षित जहाँगीर बादशाह के समय में थे । भानुदीक्षित के पुत्र हरिदीक्षित थे । इन्हीं के विद्यार्थी नागेश हैं जिन्हों ने लघुशब्देन्दुशेखर बनाया है । बहुत लोग कहते हैं कि भट्टोजिदीक्षित का जन्म १५०० शाका अर्थात् सन् १५७८ ई. में हुआ । इन का घर बंगाली टोला, बनारस में था ।

भास्कर (भास्कराचार्य) ।

दक्षिण कर्णाटक देश में सह्यपहाड़ की तराई में बीजापुर गावँ में स. १११४ ई. में पैदा हुए । इन के पिता का नाम महेश्वर था । अपने पिता ही से पढ़े थे । ३६ वर्ष की उम्र में सिद्धान्तशिरोमणि बनाई है । अपने समय के अद्वितीय गणितज्ञ थे । स. ११८३ ई. मे करणकुतूहल बनाया है । इस से साफ है कि ६९ वर्ष से अधिक उम्र मे मरे हैं । और बात जाननी हो तो मेरी गणकतरङ्गिणी देखो ।

महम्मद ।

स. ५७१ ई. की अप्रिल की २० ताः सोमवार को मक्के में पैदा हुए । अबराहम के बेटे इस्मायल से इन्हों ने धर्मोपदेश पाया था । इन्हीं का बनाया कोरान है । इन के पिता का नाम अब्दुल्लाह था जो इन की दो वर्ष की उम्र मे मर गए और इन की माँ का नाम अमीना था जो इन की छ वर्ष की उम्र मे मर गई थी । माँ बाप के मर जाने पर इन के दादा अब्दुल मुत्तलिब ने इन्हें दो वर्ष तक पाला था पर वे भी अपने बेटे अबूलतालिब को सौंप कर मर गए । अपने चाचा के साथ ये २५ वर्ष की उम्र तक थे । पीछे से एक मक्के के महाजन की विधवा स्त्री के यहाँ ऊँट हाँकने की नोकरी कर ली थी जो कि इन्हें कुछ दिन के लिए सीरिया मे भेज दिया था । पीछे से इसी स्त्री ने इन के संग अपना ब्याह कर लिया । चालीस वर्ष की उम्र में इन्हों ने अपने मत का प्रचार किया । मक्के से भाग कर जब मदाने मे आए वहाँ इन के मत का लोगों पर बड़ा प्रभाव पड़ा । सन् ६२२ ई. में इन का शाका चला जिसे हिज्र या हिज्रा कहते हैं । हिज्रा के ग्यारहवें वर्ष, स. ६३२ ई. की ८वीं जून सोमवार को मरे । तेरह दिन तक बीमार थे । मरने के समय इन की उम्र ६३ चान्द्रवर्ष की थी । जहाँ मरे उसी जगह गाड़े गए । इन्हों ने पन्द्रह स्त्रिओं के साथ ब्याह किया था ।

मोस्कोपलस (*Moschopulus, Manuel*) ।

इन का वृत्तान्त मूलग्रन्थ ही में लिखा है ।

महीधर ।

वेद का भाष्य (वेददीप) बनाया है ।

माधवाचार्य ।

ये मायण के पुत्र हैं । इन्हीं के छोटे भाई सायण हैं जिन्हों ने वेद पर वेदार्थप्रकाश भाष्य बनाया है । माधवाचार्य ने अपने सर्वदर्शन में लिखा है——

"श्रीमत्सायणदुग्धाब्धिकौस्तुभेन महौजसाः ।
सर्वे वेत्त्येष वेदानां व्याख्यातृत्वे नियुज्यताम् ॥"

इस से स्पष्ट है कि इन के छोटे भाई सायण ही ने वेदभाष्य बनाया है । माधवाचार्य ईजानगर (विजयानगर) के राजा बीरबुक्क के प्रधान मन्त्री थे । इन्हीं के कहने से सायण ने व्याकरण-माधवीयधातुवृत्ति बनाई है ।

सन् १८९६ ई. में बनारस संस्कृत कालेज के प्रधान व्याकरणाध्यापक महामहोपाध्याय दामोदरशास्त्री जी ने पण्डितपत्र में इस माधवीयधातुवृत्ति को शुद्ध कर छपवा दिया है । राजा बीरबुक्क के दानपत्र से स्पष्ट है कि ये सन् १३९१ ई. में मौजूद थे ।

मुनीश्वर ।

पयोष्णी नदी के किनारे पलच देश के दधि गावँ में इन के पूर्वज रहते थे । पीछे से इन के दादा त्रिमल्ल बनारस में चले आए । इन के पिता का नाम रङ्गनाथ था । ये बनारस में सन् १६०३ ई. में पैदा हुए । इन की भास्करलीलावती पर निसृष्टार्थ दूती टीका और सिद्धान्तशिरोमणि पर मरीचि टीका बहुत प्रसिद्ध है । मरीचि का पूर्वार्ध सन् १६३५ ई. में और उत्तरार्ध सन् १६३८ ई. में बना है । इन्हों ने सिद्धान्तसार्वभौम को सन् १६४६ ई. में बनाया है । और बातों के लिए गणकतरङ्गिणी देखो ।

याम्ब्लिकस (*Iamblichus*) *From Chalcis.*

सन् ३२५ ई. के लगभग थे । सभी गणितों के ऊपर लेख है ।

युक्लेद (*Euclid*) ।

ईशा के पहले ३०० वर्ष टालोमी सोटर (*Ptolemy of Soter*) के राज में अलेक् ज़ंड्रिया में थे । रेखागणित के १३ अध्याओं को संग्रह किए थे ।

यूलर (*Euler, Leonhard*) ।

सन् १७०७ ई. में ब्यासेल (*Basel*) में पैदा हुए और सन् १७८३ ई. में पेटर्सबर्ग (*Petersburg*) में मरे । अपने समय में अद्वितीय सिद्धान्त और गणित के पण्डित थे ।

रडोल्फ (*Rudolff, Christoff*) ।

सन् १५२५ ई. के लगभग में पैदा हुए हैं । जर्मनी के एक बीजगणितज्ञ थे ।

राबर्ट रिकार्डे (*Robert, Recorde*) ।

सन् १५१० ई. में टेन्बी वेल्स (*Tenby, Wales*) में पैदा हुए और सन् १५५८ ई. में लंडन के जेलखाने में मरे । आक्सफोर्ड में गणित के प्रोफेसर थे ।

रामेसेस (*Rameses.* III) ।

एजिप्ट में सूर्यवंशी को रामेसेस कहते हैं । तीसरे रामेसेस को हीरादत्त (*Herodutus*) राम्प्सिनिटस् (*Rhampsinitus*) कहते हैं ।

ईशामसीह के १२०० वर्ष पहले इन्हों ने लगभग २५ वर्ष तक एजिप्ट में राज किया था । सन् १८८६ में इन की लास (*Mummy*)

पाई गई है ।

इन का बहुत समय लड़ाई ही में बीता ।

रेगिओमान्टनस् (*Regiomontanus. Johannes Muller*) ।

स. १४३६ ई. जून की ६ ता. को कोनिग्स्बर्ग (*konigsberg*) में पैदा हुए और स. १४७६ ई. जुलाई की ६वीं ता. को रोम (*Rome*) में मरे । गणित और सिद्धान्त में बड़े निपुण थे । बहुत ग्रीक ग्रन्थों का अनुवाद किया है । सब से पहले इन्हीं की बनाई त्रिकोणमिति स्कूलों में पढ़ने के लिये नियत की गई है ।

लल्ल ।

परमेश्वर, आर्यभटीय के भटदीपिका-टीकाकार, के मत से पहले आर्यभट के शिष्य थे । इन के पिता का नाम भट्टत्रिविक्रम और पितामह (दादा) का नाम शाम्ब था । इन्हीं का बनाया 'शिष्यधीवृद्धिद' है । भास्कराचार्य ने अपनी सिद्धान्तशिरोमणि में इसी ग्रन्थ का बहुत खण्डन किया है । (गणकतरङ्गिणी देखो) ।

ल्याग्रेंज (*Lagrange, Joseph Louis, Comte*) ।

स. १७३६ जनवरी की २५ ता. को टूरिन (*Turin*) में पैदा हुए और स. १८१३ एप्रिल की १० ता. को प्यारिस (*Paris*) में मरे । अपने समय में अद्वितीय गणित के पण्डित थे । गणित में बहुत नई बातों का पता लगाया है जिन के आधार से गणितविद्या की बहुत वृद्धि हो रही है । ये ज्यौतिषसिद्धान्त में भी बड़े निपुण थे ।

वटेश्वर ।

इन का बनाया एक ज्यौतिषसिद्धान्त है, उस में ब्रह्मगुप्त के बहुत बातों का खण्डन है उसी सिद्धान्त में लिखा है कि ब्रह्मा की आयु में

केवल अभी साढ़े आठ वर्ष बीते हैं (कजन्मनोऽष्टौ सदलाः समा ययुः) । ये ब्रह्मगुप्त के बाद हुए हैं ।

वराहमिहिर ।

आदित्यदास के बेटे थे । भट्टोत्पल के मत से मगध के रहनेवाले थे । विक्रमराजा के यहाँ आश्रित होने से पीछे से उज्जयिनी ही में रहने लगे । स. ५०५ ई. में 'पञ्चसिद्धान्तिका' को बनाया है । इन के बनाए बृहत्संहिता, बृहज्जातक, लघुसंहिता, लघुजातक, योगयात्रा ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं । (गणकतरङ्गिणी देखो)

वालिस (*Wallis, John*) ।

स. १६१६ ई. में आक्सफोर्ड में पैदा हुए और स. १७०३ ई. में आक्सफोर्ड में मरे ।

आक्सफोर्ड में रेखागणित के प्रोफेसर थे, बहुत गणित की पुस्तकें प्रकाश की हैं ।

विडम्यान्न (*Widmann, Johann, Von Eger*) ।

सन् १४८९ ई. में थे । लेप्ज़िग् (*Leipzig*) में बीजगणित पर व्याख्यान देते थे । सब से पहले जर्मनभाषा में इन्हीं ने बीजगणित बनाया है । रेखागणित और पाटीगणित पर भी इन के ग्रन्थ हैं ।

वैटा (*Vieta*) ।

इन का पूरा नाम (*Vieta, Francois, Seigneur de la Bigotiere*) है । सन् १५४० ई. में फान्टेने-लि-काम्टे (*Fontenay-le-Comte*) में पैदा हुए और सन् १६०३ ई. में प्यारिस में मरे । अपने समय में बीजगणित में सब से प्रधान थे । त्रिकोणमिति और रेखागणित पर भी इन के ग्रन्थ हैं ।

वैष्णवदास बाबा।

दिल्ली के रहनेवाले माड़वारी वैश्य थे। सं. १८९० याने सन् १८३३ ई. में घर छोड़ कर बनारस चले आए और पण्डित श्रीभैरवमिश्रजी से जिन्हों ने शब्देन्दुशेखर पर भैरवी टीका बनाई है, व्याकरण, वेदान्त, न्याय, मीमांसा,... अच्छी तरह से पढ़ कर वेदान्ती साधु हो कर, बनारस चौकाघाट के पास वेदान्ती तुलसीदास के अखाड़े में रहने लगे। इन के पढ़ाए सैकड़ों विद्यार्थी अच्छे अच्छे पण्डित हुए। सं. १९३६, सन् १८७९ ई. जेठ सुदी दशमी को मरे। मरने के समय इन की अवस्था अस्सी वर्ष की जान पड़ती थी। मरने के एक दिन पहले मैं अपने पिता (पं. कृपालदत्त) के साथ इन से मिलने गया था। कुछ बीमार न थे, पर मेरे पिता से कहा कि आज रात मैं अपनी देह त्याग करूँगा; इस पर मैं ने कहा कि 'अभी आप दश बरस जीएँगे।' मेरी बात सुन कर उन्हों ने मुझे डाँटा कि तूँ अभी लड़का है इस बात को नहीं जान सकता। हम लोगों के घर आने पर उसी दिन दश बजे रात मरे। मैं इन से कुछ योगक्रिया भी सीखता था।

शंकर बालकृष्णदीक्षित।

इन्हों ने मरहठीभाषा में भारतीयज्योतिःशास्त्र (*History of Indian Astronomy*) सन् १८९६ ई. में लिखा है। पूने में ये बड़े प्रसिद्ध पुरुष हो गए। इन्हों ने बहुत कुछ लिखा है।

राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद।

इन का जन्म संवत् १८८० (स. १८१३) माघ-सुदि २ को हुआ और मरण स. १८९५ ई. मई की २३ ता. को बनारस में हुआ। ये जैनी गोखरू बंश में हैं। हिंदी प्रचार करने में इन्हें आदिपुरुष कहना चाहिए। इन के दादा का नाम राजा अलचंद और पिता का नाम गोविंदचंद था। पं. मथुरानाथ मालवीय (जो कि बनारस संस्कृत कालेज

के पुस्तकालयाध्यक्ष थे) के कहने से इन की माता संतान होने के लिये नित्य शिव (महादेव) की पूजा करती थी। इसी लिये बालक होने पर शिवप्रसाद नाम रक्खा गया। इन्हों ने हिंदी की उन्नति के लिये बहुत पोथिआँ बनाई हैं। और बातों के लिये हिंदी-कोविद-रत्नमाला देखो।

श्रीधर।

बहुत से लोग इन्हें भट्ट श्रीधर कहते हैं। इन्हों ने पाटी, बीज, वर्षपद्धति, त्रिशतिका (पाटीसार) इत्यादि ग्रन्थ बनाए हैं पर सब नहीं मिलते हैं। त्रिशतिका को मैं ने उपपत्ति के साथ चन्द्रप्रभा प्रेस में छपवा दिया है। मेरे मत से इन का समय सन् ९९१ ई. है। (गणकतरङ्गिणी देखो)।

श्रीपति।

बहुत लोग इन्हें श्रीपतिभट्ट भी कहते हैं। इन के बनाए पाटी, बीज, सिद्धान्तशेखर ग्रन्थ नहीं मिलते। जातक में श्रीपतिपद्धति और मुहूर्त्त में रत्नावली, रत्नसार और रत्नमाला ये ग्रन्थ मिलते हैं। एक इन का बनाया धीकोटि नाम का करणग्रन्थ भी मिलता है जो कि सन् १०३९ ई. में बनाया गया है। इस से जान पड़ता है कि ये सन् १०३९ ई. में थे। (गणकतरङ्गिणी देखो)।

श्रीहर्ष।

जैन राजशेखर के प्रबन्धकोश में जो कि सन् १३४८ ई. में बना है लिखा है कि हीर के पुत्र श्रीहर्ष बनारस में पैदा हुए। बनारस के राजा गोबिन्दचन्द्र के पुत्र जयन्तचन्द्र की आज्ञा से इन्हों ने 'नैषधचरित' बनाया। श्रीहर्ष की माता का नाम 'मामल्लदेवी' था जो कि नैषध-चरित के प्रतिसर्ग के अन्त के श्लोक से साफ है।

बनारस संस्कृतकालेज के प्रधान अध्यापक स्वर्गवासी पण्डित शीतलाप्रसादजी के पास एक पुरानी श्रीहर्ष की वंशावली थी उस में लिखा

था कि— कनौजिआ हीरामिसिर के हरखूमिसिर जो कि कनौज के राजा के प्रधान पण्डित थे। इस से जान पड़ता है कि हीरामिसिर ही संस्कृत में हीरमिश्र और हरखू श्रीहर्ष कहे गए हैं"।

बनारस में जयन्तचन्द्र सन् ११६८-११९४ ई. में राज करते थे इस लिये वही श्रीहर्ष का भी समय है।

जिसे अधिक जानने की इच्छा हो वह डा. बूलर (*Dr. Georj Bühler*) का (*A not on the History of the Sanskrit Literature*) जो कि सन् १८७१ ई. नोवेंबर की ९वीं ताः को *Bombay B. R. Asiatic Soceity* में पढ़ा गया और सन् १८५७ में छापा गया, देखो।

भास्कराचार्य का जन्म सन् १११४ ई. में है। इन्हों ने सन् ११८३ ई. में करणकुतूहल बनाया है। इस से स्पष्ट है कि भास्कर और श्रीहर्ष एकही समय के हैं।

श्रीहर्ष के विषय में लाहोर के ओरियंटल कालेज के प्रधान पण्डित महामहोपाध्याय श्रीशिवदत्तजी मुद्रितनारायण टीका सहित नैषधीय चरित की भूमिका में बहुत कुछ लिखा है।

सिकन्दर-बड़े।

ये ईशा के ३६० वर्ष पहले पैदा हुए थे।

महम्मद कोरान में सिकन्दर को जुलकर्न (दो सींगवाला) कहते हैं। मलिक महम्मद भी पद्मावत में इन्हें जुल कर्न लिखते हैं। इन के सिक्के में भी मेंड़े की दो सींग बनी है। ईशा के ३३१ वर्ष पहले इन्हों ने पर्शिया के राजा दारा को जीता था। ईशा के ३२७ वर्ष पहले हिन्दुस्तान पर चढ़ाई की थी। बे रोक टोक ये सिन्धु नदी के पार उतर आए थे पर पार होने पर पीछे से पंजाब के राजा से आगे बढ़ने के लिये रोके गए। ग्रीक लोगों ने पंजाब के राजा का नाम पोरस (*Poraos*) लिखा है। ये ३३ वर्ष की उम्र में मरे हैं।

स्टिफेल (*Stifel, Michael*)।

सन् १४८६ या सन् १४८७ ई. में एस्लिगन (*Esslingen*) में पैदा हुए और सन् १५६७ ई. में जेना (*Jena*) में मरे। अपनी गणित की पुस्तक से जो सन् १५४४ ई. में प्रकाशित हुई और जिस का नाम *Arlhmetica integra* है बहुत प्रसिद्ध हुए।

स्टेविन (*Stevin, Simon*)।

स. १५४८ ई. में ब्रगेज (*Bruges*) में पैदा हुए और स. १६२० ई. में लिडेन (*Leyden*) या हगे (*Hague*) में मरे। पाटीगणित के अच्छे पण्डित थे।

हाइप्सिक्लेस (*Hypsicles of Alexandria*)

ईशामसीह के १९० वर्ष पहले हुए हैं। घनक्षेत्रमिति और दृढ़-संख्या के सिद्धान्त पर कुछ लिखा है। कुट्टक के कई प्रश्नों के उत्तर भी निकाले हैं।

हारिओट (*Harriot, Thomas*)

स. १५६० ई. में ऑक्सफोर्ड में पैदा हुए। इसलेवर्थ (*Isleworth*) के नगीच सिओन हौस (*Sion House*) में स. १६२१ जुलाई की २ ताः को मरे।

अपने समय में अँगरेजी बीजगणितज्ञों में बहुत ही प्रसिद्ध बीज-गणित के पण्डित थे।

हीरादत्त (*Herodotus*)।

ईशामसीह के ४८४ वर्ष पहले कयारिया (*Caria*) के हालि-कयारनसस् (*Halicarnassus*) स्थान में उत्पन्न हुए थे। ग्रीक देश में इतिहास के मूलपुरुष गिने जाते हैं। इन्हों ने अपने इतिहास

को नवखण्डों में लिखा है। इन के ग्रन्थ का अँगरेजी में सब से अच्छा अनुवाद स. १८९० ई. में *G. C. Macaulay* ने किया है। जैसे हिंदुस्तान में महाभारत बनानेवाले व्यासजी की प्रसिद्धि है उसी तरह ग्रीकदेश में इन की प्रसिद्धि है। बहुतों का यह कहना है कि ये हीरादत्त व्यासजी के विद्यार्थी थे; देश विदेश घूमते ग्रीकदेश में पहुँच गए थे। इस का कहीं पता नहीं लगता। यह बात असंभव जान पड़ती है क्योंकि व्यास और हीरादत्त के समय में हजारों वर्ष का अन्तर है।

ह्यांकेल (*Hankel, Hermann*)।

स. १८३९ फेब्रुअरी की १४ ता. को हाले (*Halle*) में पैदा हुए और स. १८७३, अगस्त की २९ ता. को स्कारम्बर्ग (*Schramberg*) में मरे। मिश्रितसंख्या और गणित के इतिहास के ऊपर इन्हों ने ग्रन्थ लिखे हैं।

ह्यूगेन (*Huygens, Christiaan, von Zuylichem*)।

स. १६२९ ई. में हगे (*Hague*) में पैदा हुए और वहीं स. १६९५ ई. में मरे।

बड़े प्रसिद्ध सिद्धान्ती थे। वक्रक्षेत्रों पर भी बहुत कुछ लिखा है।

शब्दानुक्रमणिका।

Printed by B. Ram Narayan at the Prabhakari
Printing Works Benares.

१
२
३
४
४
५
५
६
७
७
८
८
९
१०
१०
२०
३०
४०
४०
५०
५०
६०

७०
८०
९०
१००
१००
२००
३००
४००
५००
६००
७००
१०००
२०००
३०००
४०००
६०००
८०००
१००००
२००००
७००००